श्रौत यज्ञ
कनिष्ठ सहायक

व्यावसायिक पाठ्यक्रम स्तर 2.5

राष्ट्रीय व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा मान्यता प्राप्त

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - 456006 (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

भूमिका

वेद साक्षात् परमात्मा के निःश्वासभूत हैं – **अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम् एतत् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्वाङ्गिरसः**- बृहदारण्यकोपनिषत् २-४-१०

चारों वेदों में अनेकानेक ज्ञानशाखाओं का मूल विद्यमान है। मनीषियों द्वारा वेदों को इष्टप्राप्ति और अनिष्ट के परिहार का अलौकिक उपाय बताया गया है। यज्ञ भी वेदमूलक है, वैदिक वाङ्मय का ब्राह्मणभाग यज्ञों के विधिविधान की विस्तृत विवेचना करता है। सृष्टि के कारण और मूलभूत तत्त्व की आराधना हम आस्तिक भारतीय, यज्ञपुरुष के रूप में करते हैं। लोककल्याणार्थ देवताओं को उद्देश्य बनाकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक अग्नि में आहुति देना यही यज्ञ का स्वरूप है।

महाभारत के शान्तिपर्व में यज्ञ की महत्ता बताई गई है-

न हि यज्ञसमं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
तस्माद्यष्टव्यमित्याहुः पुरुषेणानसूयता॥

श्रीमद्भगवद्गीता में भी यज्ञ का महत्त्व और प्रयोजनादि का ज्ञान होता है-

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥३-१०॥
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥३-१४॥

यह यज्ञ श्रौत स्मार्त भेद से दो प्रकार का है। वेदाङ्ग कल्प के श्रौतसूत्रों के अनुसार अनुष्ठीत यज्ञ श्रौतयज्ञ कहलाते हैं। स्मार्तयज्ञ गृह्यसूत्रों के अनुसार किए जाने वाले यज्ञ हैं। श्रौतयाग और उसका विधान एक महत्त्वपूर्ण विषय है। प्राचीन काल से ही देवता और मनुष्यों के लिए ऐहिक और आमुष्मिक मनोरथों की पूर्ति का यह मुख्य साधन माना गया है। श्रौतयागों का आधार संहिताओं के मन्त्र हैं, किन्तु केवल मन्त्रों की जानकारी मात्र से ही कोई याग सम्पन्न नहीं हो सकता। इसके लिए अनुष्ठान की पद्धति का भी पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है, जो कल्प की सहायता से ही उपलब्ध हो सकता है। इसी कारण भगवान् पाणिनि **हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते** इत्यादि के द्वारा कल्प को वेदपुरुष का हस्त स्थानीय कहते हैं। जिस प्रकार हाथ के बिना मानव का काम नहीं चल सकता, उसी प्रकार कल्प की जानकारी के बिना यज्ञानुष्ठान की साङ्गता नहीं हो सकती। किसी भी श्रौतयाग का अनुष्ठान सरल नहीं है। अतः विधान का पूर्णज्ञान होना नितान्त आवश्यक है।

श्रौतयागों में आर्त्विज्य (ऋत्विक् की भूमिका) करने के लिए संहिताओं का ज्ञान, अनुष्ठानों की प्रक्रियाओं का सूक्ष्मतम परिचय एवं गुरुपरम्परा से प्राप्त अनुभव किसी भी याज्ञिक के लिए अनिवार्य तो

है ही साथ ही आजीवन यज्ञविद्याओं के अध्ययन और अध्यापन में लगे रहना भी उसके लिए नितान्त आवश्यक है।

याग की प्रक्रिया समान योग्यताओं वाले निष्ठावान् वैदिकों का सामूहिक अनुष्ठान है। साथ ही विविध प्रकार की सामग्रियों का संग्रह, यज्ञीय द्रव्यों की उपलब्धि, दक्षिणा के लिए धन आदि का एकत्र करना भी श्रौतयाग के आवश्यक अंग हैं।

इन सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए, भारत सरकार की कौशल विकास योजना के अन्तर्गत महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान तथा राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं अनुसन्धान परिषद् द्वारा सञ्चालित वैदिक कौशल पाठ्यक्रमों में यह श्रौतयज्ञ का पाठ्य विषय प्रस्तुत है। पाठ्यपुस्तक का स्वरूप कुछ इस प्रकार रखा गया है जिससे श्रौतयज्ञ के परिचय और विधान को प्रारम्भिक स्तर से जाना जा सके तथा छात्र विधानों में प्रयुक्त वेदमन्त्र, सूत्र तथा कारिकाओं को जानकर प्रयोग में ला सकें।

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं	अध्याय का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**इकाई** – 1 वेद और श्रौत वाङ्मय का परिचय	1 - 20
2	**इकाई** –2 श्रौतयज्ञ का परिचय	21 - 24
3	**इकाई**-3 श्रौतकर्म का त्रैविध्य	25 - 27
4	**इकाई**-4 आर्त्विज्य (यज्ञों के ऋत्विज् और उनके कर्तव्य)	28 - 33
5	**इकाई**-5 श्रौतयज्ञ की भूमि और वेदी मण्डप	34 - 37
6	**इकाई** -6 श्रौतयज्ञ के पात्र व आवश्यक द्रव्य	38 – 51
7	**इकाई**- 7 अग्न्याधान	52 - 65
8	परिशिष्ट	66 - 70
9	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	71

इकाई –1

वेद और श्रौत वाङ्मय का परिचय

वेद परिचय

विद् सत्तायाम्', 'विद् ज्ञाने', 'विद् विचारणे' और 'विद्लृ लाभे' – इन चार धातुओं से 'वेद' शब्द निष्पन्न होता है। 'जिसकी सदैव विद्यमानता (सत्ता) हो', 'जो अपूर्व ज्ञानप्रद हो', 'जो इह और पर उभयविध विचारों का कोश हो', 'जो लौकिक और लोकोत्तर लाभप्रद हो', ऐसी ज्ञानराशि को 'वेद' कहते हैं। **'विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिः धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः'** (विष्णुमित्र, ऋग्वेदप्रातिशाख्य-वर्गद्वयवृत्तिः) अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष ये चार पुरुषार्थ जिसके द्वारा जाना जाए या प्राप्त किया जाए वह वेद है। वेद सर्वविध ज्ञान और सभी विचारों के मूल स्त्रोत हैं, वेद नित्य हैं और सभी कालों में मनुष्य को उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति और उनके उपयोग के उपाय बताते हैं। वेदों में सत्ता, ज्ञान, विचार और लाभ ये चारों गुण विद्यमान हैं। सिद्धान्तकौमुदी में 'विद्' धातु के अर्थ इस प्रकार उल्लेखित हैं-

सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ ॥

महान् वेदभाष्यकार आचार्य सायण के अनुसार- वेद इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के निवारण का अलौकिक उपाय बताने वाले हैं (**इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोः अलौकिकम् उपायं यो वेदयति स वेदः**)। हमारे जीवन के लिए उपयोगी एवं आवश्यक ज्ञान वेदों से प्राप्त होता है। महर्षि आपस्तम्ब ने "वेद" की परिभाषा करते हुए कहा है- **मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्** । इस परिभाषा से वेद के स्वरूप का बोध होता है।

वेद के दो विशिष्ट भाग हैं – मन्त्र और ब्राह्मण, वेद की संहिताएँ मन्त्रभाग के अन्तर्गत हैं तथा वेद का ब्राह्मणादि वाङ्मय ब्राह्मण के अन्तर्गत आता है। परमपिता परमेश्वर की वाणी रूपी वेद शब्द को श्रुति, निगम, आम्नाय इत्यादि नामों से भी जाना जाता है।

ऋषियों ने अपनी तपस्सिद्ध दिव्य चैतन्यमयी आर्ष दृष्टि से जिस दिव्य ज्ञान का दर्शन (साक्षात्कार) किया है, उसको वेद कहते हैं। भारतीय ज्ञान-परम्परा एवं धर्म के मूल में वेदों में निहित दिव्य ज्ञान ही है। मनु ने धर्म के मुख्य स्त्रोत के रूप में वेदों को स्वीकार करते हुए कहा है-

"स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः" । "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।"

आचार्य सायण के अनुसार इन्द्रियातीत तत्त्वों की प्रतीति वेदों से होती है –

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

वेद का वेदत्व यही है कि जो पदार्थ और उसकी प्राप्ति का उपाय (ज्ञान), प्रत्यक्ष तथा अनुमान से नहीं मिलता वह वेद के द्वारा प्राप्त होता है, अर्थात् प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों से जो सामने या परोक्ष स्थित वस्तु तथा उसके ज्ञान का उपाय प्राप्त नहीं होता है, उस इन्द्रिय अनुभव से परे अलौकिक वस्तु अथवा उसके ज्ञान का उपाय वेद से प्राप्त होता है।

गणित, संख्याशास्त्र, सङ्गणनपद्धति, भूगर्भशास्त्र, शरीर विज्ञानशास्त्र, जीववैविध्यशास्त्र, आयुर्वेद, प्राणिविज्ञान, मनुष्य के विविध अङ्गों एवं उनके क्रियोओ का उल्लेख, वनस्पतिविज्ञान, जल भैषज्य, ज्ञानप्राप्ति के मार्ग–उपाय, वनौषधि - औषधीय पौधे, रत्न एवं धातु विज्ञान, वास्तुविज्ञान, नाडीविज्ञान, मानव मनोविज्ञान, वृष्टिविज्ञान, जलशोधन, ज्योतिषविद्या, यज्ञविद्या, प्राणविद्या, पञ्चकोशविद्या,भारतीय दर्शन के मूलतत्व, स्वयं को (आत्मा को) जानने का विज्ञान के मूल मार्ग, प्रकृति की मूल शक्तियों का स्वरूप विज्ञान, व्यक्ति एवं आराध्य की एकता का उपदेश (अहं ब्रह्मास्मि द्वारा), विविध नामों से कहे जानेवाले देवता एक (एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति), मनुष्य को सदा आनन्दमय बने रहने के रहस्य आदि का प्रथम उपदेश वेदों में है। प्रकृति के साथ समरसता बिठाने का मूलमन्त्र वेद में है। मानवीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रथम उपदेश, नैतिक मूल्य, सामाजिक दायित्व एवं समरसता का, विश्वदृष्टि एवं विश्वबन्धुत्व का, विश्व शान्ति का मूल मन्त्र वैदिक शान्ति मन्त्रों में ऋषियों द्वारा दृष्ट है। भारतीय भाषाओं के शब्दों का मूल तथा शब्दों का अथाह भण्डार वेद हैं। विश्व के विविध भाषाओं की सभ्यता के मूलशब्द वेद मूलक हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली के मूल में वेद एवं वैदिक ज्ञान हैं इस प्रकार वेदों की महत्ता को स्पष्टतया देखा जा सकता है।

वेदों का महत्त्व बहु-आयामी है। भारतीय संस्कृति का मूल आधार वेद है। वेद में उच्चतम आध्यात्मिक ज्ञान (परा विद्या) के साथ-साथ संसार का ज्ञान (अपरा विद्या) भी मिलता है। वेद मात्र अध्यात्म ही नहीं अपितु भाषा, साहित्य, विज्ञान, चिकित्सा, राजनीति विज्ञान, मनोविज्ञान, कृषि, काव्य, कला, सङ्गीत इत्यादि विषयों के दृष्टिकोण से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वेदों में राजनीतिशास्त्र की सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। इसमें राष्ट्र का स्वरूप, उसके विविध अङ्ग, राजा व उसके कर्तव्य, न्याय एवं दण्डविधान आदि विषय उल्लेखनीय हैं। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। इनमें समस्त ज्ञान निहित है। वेदों में ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्र हैं। यह मन्त्र तीन प्रकार से प्राप्त होते हैं, जो क्रमशः ऋक्, यजुष तथा साम कहे जाते हैं।

वेदत्रयी के अन्तर्गत चारों वेदों को स्वीकार किया गया है। यहाँ वेदत्रयी से तात्पर्य है ऋक्, यजुस् तथा सामन् (छन्दस्, गद्य,गीति) जो न कि तीन वेद हैं अपितु मन्त्रों के तीन प्रकार हैं। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है- **त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि ।** - श.ब्रा. ४/६/७/१

पद्यात्मक छन्दोमयी वाणी ऋचा के नाम से, गानमयी वाणी साम के नाम से तथा गद्यात्मक वाणी यजुस् के नाम से प्रसिद्ध है। अत: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद संहिताओं में ऋक्,

यजुस् और साम (छन्द, गद्य, गान) के अतिरिक्त किसी विधा का कोई भी मन्त्र नहीं दिखाई देता है। इसलिए महर्षि जैमिनि का कथन है- **तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था । गीतिषु सामाख्या । शेषे यजुः शब्दः।** - जैमिनीयन्यायमाला २/१/३२-३४

पुनः यदि यज्ञ के दृष्टि से विचार करते हैं तो, यज्ञ में प्रमुख ४ ऋत्विज होते हैं। ऋग्वेद्विद् होता, यजुर्वेद्विद् अध्वर्यु, सामवेद्विद् उद्गाता, तथा अथर्ववेद्विद् ब्रह्मा के नाम से जाना जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण की निम्नलिखित उक्ति भी यही स्पष्ट सिद्ध करती है कि सरलता पूर्वक यज्ञ कार्य के निर्वाह के लिए चारों वेदों के विषयों को त्रयी विद्या के रूप में ग्रहण किया गया है- **यदृचैव हौत्रं क्रियते यजुषाध्वर्यवं साम्नोद्गीथं व्यारब्धा त्रयी विद्या भवत्यथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इति त्रय्या विद्यया इति ब्रूयात्।** - ऐ.ब्रा. ५/५/८

यहाँ पर 'अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते? त्रय्या विद्यया' से यह भी स्पष्ट होता है कि त्रयी विद्या ब्रह्मा की कार्य साधिका है। अथर्ववेद के अध्ययन के बिना समग्र त्रयी विद्या का ज्ञान असम्भव है। "**ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति**" - निरुक्त १/३/३

अतः अथर्ववेद का ज्ञाता ही ब्रह्मा होता है, जो यज्ञ की सभी प्रकार से रक्षा करता है। निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि वेदत्रयी से चारों वेदों का ज्ञान होता है।

वेदों में ईश्वर, अलौकिक शक्ति, खगोल विज्ञान, ब्रह्माण्ड, गणित की अवधारणाएँ, चिकित्सा, भूगोल, इतिहास, ऋतुएँ, प्रकृति, अच्छाई, सार्वभौमिक धार्मिकता, मानव व्यवहार, दर्शनशास्त्र, संगीत आदि विविध विषय सन्निहित हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, "वेद सभी प्रकार के ज्ञान के प्रमुख स्रोत हैं"। वेदों का दार्शनिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक, आर्थिक, सुरक्षा और वैज्ञानिक दृष्टि से विशिष्ट महत्त्व है। वेदों में आधुनिक जगत के अनेक आवश्यक विचारों और ज्ञान शाखाओं की मूल संकल्पना निहित है।

वेदों ने हमें जीवन जीने के तरीके सिखाएं, वहीं सङ्केत किया कि इस ब्रह्माण्ड में समस्त वस्तुएँ मिलकर एक कुटुम्ब का निर्माण करती हैं, जहाँ हम प्रकृति के साथ जीवन को संतुलित करते हुए, पृथ्वी को अपनी माँ तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को एक परिवार के रूप में मानते हैं। वेद हमें मानवता, विनम्रता, शान्ति और विश्वबन्धुत्व का मार्ग दिखाते हैं तथा सूर्य के समान मित्र की दृष्टि से सभी को एक समान देखना सिखाते हैं।

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

- यजुर्वेद ३६.१८

अर्थात्, तुम द्रोह करने वालों के प्रति द्रोह मत करो। विचार करो कि सभी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं भी सभी को मित्र की दृष्टि से देखूँ। हम सभी परस्पर मित्र की भाँति रहें।

श्रौतसूत्रों का परिचय

सर्वप्रथम हमें वेदाङ्गों का परिचय होना आवश्यक है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये वेद के छः अंग हैं। इन अंगों की सहायता के बिना वेद का अर्थ नहीं जाना जा सकता। 'ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च' इस वाक्य से इनका महत्त्व दिखाया है। यद्यपि वेदमन्त्र के पठन मात्र से अभिलषित प्राप्त होता है तथापि स्वर, वर्ण और अर्थ से रहित पाठ से अनिष्ट होना भी कहा है। इन छः अंगों में वेद का छन्द पैर, कल्प हाथ, ज्योतिष नेत्र, निरुक्त कान, शिक्षा नाक, और व्याकरण मुख कहा है।

कल्प एक महत्त्वपूर्ण वेदाङ्ग है, ऋग्वेद प्रातिशाख्य के वर्गद्वयवृत्तिकार विष्णुमित्र ने परिभाषित किया है- **वेदविहितानां कर्मणाम् आनुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्**। श्रौत, स्मार्त्त, धर्म और शुल्ब इस प्रकार चार भागों में विभाजित कल्पसूत्रों में श्रौतसूत्रों का महत्त्वपूर्ण विषय श्रौतयाग (वेदों में निर्दिष्ट याग) और उसका विधान है। प्राचीन काल से ही सभी के लिए ऐहिक और आमुष्मिक मनोरथों की पूर्ति का यह मुख्य साधन माना गया है। श्रौतयागों के आधार संहिताओं के मन्त्र हैं किन्तु केवल मन्त्रों की जानकारी मात्र से ही कोई याग सम्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए कल्प सूत्रों, विशेषतः श्रौतसूत्रों का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। उपलब्ध श्रौतसूत्रों की तालिका इस प्रकार है-

क्र.	श्रौतसूत्र	विषय	वेद
1	आश्वलायन, शाङ्खायन	हौत्र कर्म	ऋग्वेद
2	कात्यायन	अध्वर्यु कर्म	शुक्लयजुर्वेद
3	बौधायन,वाधूल,मानव,भारद्वाज, आपस्तम्ब, काठक, सत्याषाढ, वैखानस, हिरण्यकेशी, वाराह	अध्वर्यु कर्म	कृष्णयजुर्वेद
4	आर्षेयकल्प(मशक), जैमिनीय, लाट्यायन, द्राह्यायण, निदान	औद्गात्र कर्म	सामवेद
5	वैतान श्रौतसूत्र	ब्रह्मत्व कर्म	अथर्ववेद

1.1 वेद और उनके श्रौतसूत्रों का परिचय

ऋग्वेद -

वैदिक वाङ्मय में पाद, अर्थ से युक्त तथा छन्दोबद्ध ऋचाओं के समूह को ऋग्वेद कहा गया है, महर्षि जैमिनि ने उल्लेख किया है- 'पादबद्धा ऋक्'। विष्णुमित्र ने कहा है-

'यः कश्चित्पादवान्मन्त्रो युक्तश्चाक्षरसम्पदा।

स्वरयुक्तोऽवसाने च तामृचं परिजानते॥'

जिस वेद के मन्त्रों से देवताओं की स्तुति की जाती है, उस वेद को ऋग्वेद कहते हैं। जैमिनीय न्यायमाला में कहा गया है - **ऋच्यन्ते स्तूयन्ते देवा अनया इति ऋक्**। निष्कर्ष रूप में, जिन मन्त्रों में अर्थ विच्छिन्न नहीं होता है, जिन मन्त्रों में अर्थ के अनुसार पाद होते हैं तथा जिन मन्त्रों में पाद, निश्चित अक्षरसंख्या में निबद्ध होते हैं, उन मन्त्रों का समूह ही ऋग्वेद है।

ऋग्वेद की शाखाएँ -

महर्षि पतञ्जलि ने कहा है- '**एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्**' इसके अनुसार ऋग्वेद में इक्कीस (२१) शाखाएँ मिलती थीं। परन्तु चरणव्यूह में ऋग्वेद की इन पाँच शाखाओं का नामोल्लेख है-

१. शाकलशाखा

२. बाष्कलशाखा

३. शांखायनशाखा

४. आश्वलायनशाखा

५. माण्डूकायनशाखा

वर्तमान में इनमें से केवल शाकल शाखा ही अध्ययन-अध्यापन परम्परा में दिखाई देती है। अन्य शाखाओं में कुछ शाखाओं की संहिताएँ ही प्राप्त होती हैं, जैसे- शांखायन संहिता ।

ऋग्वेद की मन्त्र संख्या एवं विभाजन -

ऋग्वेद में कुल १०५५२ ऋचाएँ, २००६ वर्ग, १०१७ सूक्त तथा ११ परिशिष्ट (खिल) सूक्त हैं। ऋग्वेद को अष्टक क्रम एवं मण्डल क्रम में विभक्त किया जाता है। परम्परा में सस्वर अध्ययन की दृष्टि से अष्टक क्रम ही मानित है।

अष्टक क्रम –

इस विभाजन क्रम में सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता को ८ अष्टकों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक अष्टक में ८ अध्यायों को समाहित किया गया है तथा प्रत्येक अध्याय में 'वर्ग' प्राप्त होते हैं। इस विभाजन क्रम में ऋग्वेद संहिता कुल ६४ अध्यायों में विभाजित है। अध्ययन-अध्यापन परम्परा की दृष्टि से यह विभाजन क्रम मान्य है।

अष्टक		अध्याय		कुल अध्याय
८	x	८	=	६४

मण्डल क्रम-

इस विभाजन क्रम में सम्पूर्ण ऋग्वेद संहिता को १० मण्डलों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक मण्डल में अनुवाकों का तथा प्रत्येक अनुवाक में सूक्तों का समायोजन किया गया है। यह विभाजन ऋषि, देवता, छन्द की दृष्टि से उपयुक्त माना जाता है। आधुनिक वेद चिन्तक मण्डलक्रम का आश्रय लेते हैं।

मण्डल	द्रष्टा ऋषि	अनुवाक संख्या	सूक्त संख्या	मन्त्र संख्या
प्रथम मण्डल	शतर्चिनः	२४	१९१	२००६
द्वितीय मण्डल	गृत्समद एवं उनके वंशज	४	४३	४२९
तृतीय मण्डल	विश्वामित्र एवं उनके वंशज	५	६२	६१७
चतुर्थ मण्डल	वामदेव एवं उनके वंशज	५	५८	५८९
पञ्चम मण्डल	अत्रि एवं उनके वंशज	६	८७	७२७
षष्ठ मण्डल	भारद्वाज एवं उनके वंशज	६	७५	७६५
सप्तम मण्डल	वसिष्ठ एवं उनके वंशज	६	१०४	८४१
अष्टम मण्डल	कण्व एवं उनके वंशज	१०	९२+११(वालखिल्य)	१७१६
नवम मण्डल	पवमान सोम, विविध ऋषि	७	११४	११०८
दशम मण्डल	महासूक्तीय, क्षुद्रसूक्तीय इत्यादि।	१२	१९१	१७५४
	कुल	८५	१०२८	१०५५२

ऋग्वेदीय श्रौतसूत्र

ऋग्वेदीय श्रौतसूत्र-ये दो हैं-(१) शांखायन (३) आश्वलायन। इन दोनों में हौत्रकर्म का विवेचन है।मन्त्रों की दृष्टि से आश्वलायन की तुलना में शांखायन श्रौतसूत्र अधिक समृद्ध है।

(१) शाङ्खायन श्रौतसूत्र- इसके रचयिता सुयज्ञ शाङ्खायन हैं। इसमें 18 अध्याय हैं तथा इस श्रौतसूत्र पर आनर्तीय और गोविन्द टीकाएँ उपलब्ध होती हैं। यह श्रौतसूत्र ऋग्वेद की शाङ्खायन शाखा और कौषीतकि ब्राह्मण का अनुसरण करता है। इसमें यज्ञसम्बन्धी सामान्य नियमों से लेकर महाव्रत पर्यन्त यज्ञों का वर्णन है।

(२) आश्वलायन श्रौतसूत्र- यह ऋग्वेद की शाकल एवं बाष्कल दोनों शाखाओं का अनुसरण करता है।

आश्वलायन श्रौतसूत्र में कुल बारह अध्याय हैं जो छह-छह अध्यायों के दो भागों में बँटा हुआ है। प्रथम भाग को पूर्वाष्टक तथा द्वितीय भाग को उत्तराष्टक नामों से जाना जाता है। इस सूत्र में मुख्य रूप से 'होतृ' के कार्यों पर प्रकाश डाला गया है परन्तु अध्वर्यु आदि अन्य ऋत्विजों के कार्यों का भी उल्लेख है। अग्निहोत्र, पिण्डपितृयज्ञ आदि यज्ञों में होतृ का कोई कार्य नहीं होता तथापि इन विषयों को लिया गया है। प्रथम छह अध्यायों मे दर्श-पूर्णमास यज्ञों में होतृ के कार्यों का विवरण है। सप्तम तथा अष्टम अध्यायों में प्रायश्चित्त, सत्र, गवामयन आदि यज्ञों का वर्णन है। नौ से बारह अध्याय तक 'अहीन' तथा सत्र यज्ञों का वर्णन है।

यजुर्वेद-

यजुर्वेद शब्दार्थ - यजुस् शब्द यज् धातु से निष्पन्न है, जिसके अनेकार्थ प्राप्त होते हैं –

१. इज्यते अनेन इति यजुः – जिसके द्वारा यजनादि क्रिया की जाती है वह यजुः है।

२. गद्यात्मको यजुः – ऋग्वेदादि संहिताओं के मन्त्र छन्दोबद्ध हैं, किन्तु यजुर्वेदीय मन्त्र गद्यात्मक होने के कारण इन्हें यजुस् कहा गया।

३. अनियताक्षरपादावसानं यजुः – जिन मन्त्रों के अक्षर, पाद एवं अवसान आदि अनिश्चित हों, उन्हें यजुस् कहा गया है।

यजुर्वेद के सम्प्रदाय –

यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय हैं – १. ब्रह्म सम्प्रदाय २. आदित्य सम्प्रदाय । सम्प्रदाय-परम्परा के अनुसार युगान्त के बाद कल्पारम्भ में वेद रक्षणार्थ भगवान् ने हयग्रीव अवतार धारण कर शङ्खासुर का संहार किया और वेदों को ब्रह्मदेव को प्रदान किया। ब्रह्माजी ने वेदों की रक्षा हेतु वेदराशि को दो भागों में विभाजित कर एक भाग भगवान् आदित्य को प्रदान किया, वह आदित्य सम्प्रदाय के रूप में विख्यात हुआ। एक भाग वसिष्ठ,अङ्गिरा आदि महर्षियों को अध्ययन रूप में प्रदान किया, उन्होंने अपने पुत्र-पौत्र,

शिष्य-प्रशिष्यों को दिया वह कालक्रम में ब्रह्म सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आदित्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत शुक्ल यजुर्वेद तथा ब्रह्म सम्प्रदाय के अन्तर्गत कृष्ण यजुर्वेद है।

यजुर्वेद का विभाजन-

चरणव्यूहादि वाङ्मय के अनुसार यजुर्वेद की कुल १०१ शाखाएँ हैं, शाखाओं की संख्या में विभिन्नता होने पर भी अनेक विद्वानों ने यजुर्वेद की शाखाओं की संख्या १०१ स्वीकार की है। महर्षि पतञ्जलि ने भी 'एकशतमध्वर्युशाखा' कहकर यजुर्वेद की १०१ शाखाओं का उल्लेख किया है।

यजुर्वेद में दो विभाग हैं- 'शुक्ल यजुर्वेद' तथा 'कृष्ण यजुर्वेद'। चरणव्यूह के अनुसार शुक्ल यजुर्वेद की १५ व कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाएँ हैं। विद्वानों के मत से मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग पृथक् होने से शुक्ल यजुर्वेद कहलाता है। इसी प्रकार मन्त्रभाग, ब्राह्मणभाग तथा आरण्यक भाग के मिश्रत्व के कारण कृष्ण यजुर्वेद कहा गया है।

शुक्ल यजुर्वेद- द्वापर युग में मनुष्यों की अल्प प्रज्ञा को ध्यान में रखते हुए महर्षि वेदव्यास जी ने सम्पूर्ण वेदराशि को चार भागों में विभक्त कर अपने शिष्यों पैल, वैशम्पायन, जैमिनि तथा सुमन्तु द्वारा प्रवर्तित किया। महर्षि याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन महर्षि वैशम्पायन से किया। दैवदुर्विलास से अपने गुरु की आज्ञा का उल्लङ्घन होने के कारण गुरु आज्ञा से अधीत विद्या का त्याग कर कालक्रम में महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने गायत्री पुरश्चरण और सूर्योपासना कर भगवान आदित्य के अनुग्रह से आदित्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत चारों वेदों को प्राप्त किया ।

आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते । (शतपथ ब्राह्मण १४.९.५.३३)

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा प्रवर्तित शुक्ल यजुर्वेद की १५ शाखाएँ –

१. काण्व	२. माध्यन्दिन	३. शापेय
४. तापनीय	५. कपोल	६. पौण्ड्रवत्स
७. आवटिक	८. परमावटिक	९. पाराशर्य
१०. वैनधेय	११. बौधेय	१२. औधेय
१३. गालव	१४. बैजवाप	१५. जाबाल

शुक्ल यजुर्वेद का स्वरूप -

शुक्ल यजुर्वेद की काण्व एवं माध्यन्दिन दो शाखाओं का अध्ययन-अध्यापन वर्तमान समय में प्रचलित है अन्य तेरह शाखाओं की अध्ययन परम्परा तथा संहिताएँ अनुपलब्ध हैं।

काण्व शाखा –

काण्व शाखा शुक्ल यजुर्वेद की प्रथम शाखा मानी जाती है। महर्षि बौधायन के पुत्र महर्षि कण्व इसके प्रथम प्रवर्तक हैं। सम्पूर्ण भारत में काण्व शाखा की दो उच्चारण पद्धतियाँ प्रचलित हैं- काशी पद्धति एवं दाक्षिणात्य पद्धति। वर्तमान समय में काण्व शाखा का अध्ययन-अध्यापन उत्तर भारत, दक्षिण भारत, महाराष्ट्र, गुजरात, ओडिशा प्रान्त में प्रचलित है। शुक्ल यजुर्वेद काण्व संहिता में कुल ४० अध्याय, ३२८ अनुवाक, २०८६ मन्त्र हैं।

माध्यन्दिन शाखा –

शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन शाखा के प्रथम प्रवर्तक महर्षि मध्यन्दिन हैं। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता में ४० अध्याय, ३०३ अनुवाक तथा १९७५ मन्त्र हैं ।

परिशिष्ट - महर्षि कात्यायन जी ने शुक्ल यजुर्वेद के १८ परिशिष्टों का उपदेश किया है –

१. यूप लक्षण	२. छाग लक्षण	३. प्रतिज्ञा परिशिष्ट
४. अनुवाक् सङ्ख्या	५. चरणव्यूह	६. श्राद्धसूत्र
७. शुल्बसूत्र	८. ऋग्यजुष	९. पार्षद
१०. इष्टकापूरण	११. प्रवराध्याय	१२. मूल्याध्याय
१३. उञ्छशास्त्र	१४. निगम	१५. यज्ञपार्श्व
१६. हौत्रिक	१७. प्रसवोत्थान	१८. कूर्मलक्षण

इनमें से कुछ परिशिष्ट श्रौत विषयक, स्मार्त्त विषयक, उभयात्मक और कुछ में प्रातिशाख्य तथा शिक्षा के अवशिष्ट विषय हैं।

कृष्णयजुर्वेद परिचय

कृष्ण-यजुर्वेद की कुल ८६ शाखाएँ थी वर्तमान में केवल 4 शाखाओं की संहिताएँ उपलब्ध हैं तथा यह अध्ययन-अध्यापन परम्परा में प्रचलित हैं। (१) तैत्तिरीय शाखा (२) मैत्रायणी शाखा (३) कठशाखा और (४) कपिष्ठल शाखा।

कृष्णयजुर्वेद में संहिता, ब्राह्मण व आरण्यक एक साथ प्राप्त होते हैं। अतः **'त्रीणि मन्त्रब्राह्मणारण्यकानि यस्मिन् वेदशब्दराशौ सह तरन्ति पठ्यन्ते, असौ तित्तिरिः'** ऐसी व्युत्पत्ति कर सकते हैं। शौनकीय चरणव्यूह परिशिष्ट में यजुर्वेद का लक्षण बताते हुए इसी भाव को स्पष्ट किया गया है-

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदे त्रिगुणं यत्र पठ्यते ।

यजुर्वेदः स विज्ञेयः अन्ये शाखान्तराः स्मृताः॥ - चरणव्यूह

इस कथन का यह अभिप्राय लिया जाता है कि जहाँ मन्त्र और ब्राह्मण का एक साथ त्रिगुण पाठ (संहिता-पद-क्रम) किया जाता है, उसे यजुर्वेद जानना चाहिये।

कृष्णयजुर्वेद का कतिपय शाखाओं के नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं ।

१.चरक	२.आह्वरक	३.कठ	४.प्राच्य-कठ
५.कपिष्ठल कठ	६.चारायणीय	७. वारायणीय	८.वार्तातन्वीय
९. श्वेताश्वतर	१०.औपमन्यव	११. पाताण्डवीय	१२. मैत्रायणी
१३. मानव	१४. वराह	१५. दुन्दुश	१६. छागलेय
१७. हारिद्रवीय	१८. श्यामायन	१९. श्यामा	२०. तैत्तिरीय
२१. औख्य	२२.खाण्डिकेय	२३. आपस्तम्ब	२४. भारद्वाज
२५. हिरण्यकेशी	२६. बहु धायन	२७. सत्याषाढ	२८. क्षेत्रेय
२९. आलम्बि	३०. पलङ्ग	३१. कमल	३२. ऋचाभ
३३. आरुणि	३४. ताण्ड्य	३५. कलाप या कलापी	३६. तुम्बुरु
३७. उलप	३८. वैखानस	३९. बाधूल	४०.अग्निवेश
४१. कुडन्य	४२. हारीत	४३. ऐकेय	

तैत्तिरीय शाखा

कृष्णयजुर्वेद के प्रवर्तक वैशम्पायन के शिष्यों में तित्तिर ऋषि थे । तित्तिर का नामोल्लेख महर्षि पाणिनि ने भी किया है, अतः तित्तिर नामक ऋषि के द्वारा प्रवचन किये हुए यजुषों तथा उनके अनुयायी लोगों को तैत्तिरीय नाम दिया गया। तैत्तिरीय शाखा में मन्त्र और ब्राह्मण का मिश्रित पाठ है, अतः मन्त्र, ब्राह्मण और आरण्यक जिस शाखा या वेदभाग में सम्मिश्रित रूप में अन्तर्हित हैं, वह वेदभाग या शाखा तैत्तिरीय के रूप में व्यवहृत किया जाता है।

वर्तमान समय में तैत्तिरीय संहिता कृष्णयजुर्वेद की प्रतिनिधि संहिता है। कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता का प्रसार दक्षिण भारत में है। कुछ महाराष्ट्र प्रान्त तथा अधिकांशतः तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल, आन्ध्र, तेलंगाना प्रदेश में इस शाखा के वेदपाठी एवं अनुयायी हैं। कर्णाटक में शृंगेरी, मैसूरु, मत्तूरु, तमिलनाडु के कुम्भकोणम्, श्रीरङ्गम्, काञ्ची, आन्ध्र के तिरुपति, कृष्णा एवं गोदावरी नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में इस शाखा का विशेष प्रचार है। इस शाखा का संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र आदि के रूप में विशाल वाङ्मय सुरक्षित है। तैत्तिरीय संहिता में सारस्वत तथा आर्षेय के रूप में दो पाठभेद हैं। आज इस शाखा की जो संहिता उपलब्ध है, वह सारस्वत-परम्परा की मानी जाती है। इस सारस्वत परम्परा में मन्त्र-ब्राह्मण का सम्मिश्रण होने पर भी तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण

तथा तैत्तिरीय आरण्यक अलग-अलग विभाग में प्राप्त हैं। इस परम्परा में उपलब्ध तैत्तिरीय संहिता में कुल ७ काण्ड, ४४ प्रपाठक/प्रश्न, ६५१ अनुवाक् हैं।

तैत्तिरीय-परम्परा में बौधायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ जैसे आचार्यों के द्वारा तैत्तिरीय संहिता के आर्षेय पाठक्रम का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इस पाठक्रम के अनुसार यह पाँच काण्डों में विभक्त है- (१) प्राजापत्य-काण्ड, (२) सौम्य काण्ड, (३) आग्नेय-काण्ड, (४) वैश्वदेव-काण्ड (५) स्वायम्भुव काण्ड।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन काण्ड या अष्टक, २८ प्रपाठक और ३५३ अनुवाक हैं। इसमें तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त यज्ञों के प्रयोगविधि का विस्तारपूर्वक वर्णन प्राप्त होता है ।

कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीयशाखा का प्रतिपाद्य विषय

भाग	प्रतिपाद्य विषय	पञ्चाशत्-अनुवाक सङ्ख्या
प्रथमकाण्ड	दर्शपूर्णमास, अग्निष्टोम में क्रयण, पुनराधान, राजसूय आदि	१४६ अनुवाक, ३४२ पञ्चाशत् एवं १६५७२ पद
द्वितीयकाण्ड	पशुविधान, इष्टिविधान, कारीरीष्टि विधान, प्रयाजविधि आदि	७५ अनुवाक, ३८४ पञ्चाशत् एवं १९२७३ पद
तृतीयकाण्ड	पवमानग्रहों का व्याख्यान, वैकृतविधान, इष्टिविधान, जयाभ्यातान-राष्ट्रभृद्धोमविधान, आदि	५५ अनुवाक, २०६ पञ्चाशत् एवं १०६२२ पद
चतुर्थकाण्ड	अग्निचिति, देवयजन, चितिवर्णन, रुद्राध्याय, परिषेचनसंस्कार, वसोर्धारादि होममन्त्र (चमकाध्याय) आदि	८२ अनुवाक, २७९ पञ्चाशत् एवं १४०९५ पद
पञ्चमकाण्ड	उख्याग्निकथन, चित्युपक्रम, चितिनिरूपण, इष्टकात्रय-वायव्यपशु आदि निरूपण, उपानुवाक्यशिष्टकर्म निरूपण आदि	१२० अनुवाक, ४०३ पञ्चाशत् एवं १९४०४ पद
षष्ठकाण्ड	आतिथ्येष्टिविधान, अन्तर्यामग्रह, सोममन्त्रब्राह्मण निरूपण, सोमपात्रप्रशंसा	६६ अनुवाक, ३३३ पञ्चाशत् एवं १६९८१ पद

सप्तमकाण्ड	अश्वमेध, षड्रात्रादि निरूपण, सत्रकर्म निरूपण, गवामयनसत्र, ब्रह्मवर्चसहोम, अन्नहोममन्त्र आदि	१०७ अनुवाक, २५१ पञ्चाशत् एवं १२३४० पद
	कुल-	६५१ अनुवाक, २१९८ पञ्चाशत् एवं १०९२८७ पद

मैत्रायणीय शाखा -

मैत्रायणी शाखा के सम्बन्ध में हरिवंश पुराण में वर्णन प्राप्त है। पं. भगवद्दत्त के अनुसार मैत्रायण ऋषि मैत्रायणी शाखा के प्रवर्तक थे। इस शाखा के भौगोलिक क्षेत्र गुजरात और नर्मदा के उत्तरी प्रदेश थे। मानव गृह्यसूत्र की भूमिका के अनुसार यह शाखा मयूर पर्वत से लेकर गुर्जरदेश-पर्यन्त पश्चिमोत्तर कोण में फैली थी। गुजरात में मोढ ब्राह्मण इस शाखा का अनुसरण करने वाले हैं।

मैत्रायणी संहिता में भी मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का पाठ प्राप्त है। इसमें ४ काण्ड एवं ५४ प्रपाठक हैं। इस शाखा का मैत्रायणीयोपनिषद् भी उपलब्ध है। मैत्रायणीय शाखा के मानव, वराह आदि श्रौतसूत्र एवं गृह्यसूत्र प्राप्त हैं।

काठक या कठ शाखा -

व्यास के शिष्य वैशम्पायन के ९ शिष्यों में औदीच्य आचार्य कठ भी थे। कठ ऋषि इस शाखा के प्रवर्तक हैं। कृष्णयजुर्वेद की कठ या काठक शाखा अत्यधिक प्रसिद्ध थी। पतञ्जलि के अनुसार प्रत्येक ग्राम में कठ एवं कालाप शाखा का अध्ययन किया जाता था- "ग्रामे ग्रामे काठकं कालापं च प्रोच्यते" (महाभाष्य-४.३.१०१)। कठशाखीय ब्राह्मण कपिष्ठल-शाखीयों के साथ पंजाब प्रान्त में रहते थे। वर्तमान में कठ-शाखीय ब्राह्मण कश्मीर में ही उपलब्ध हैं। व्यास नदी का तटवर्ती क्षेत्र भी इस शाखा के अध्येताओं का स्थान था, इसी कारण आज भी हरियाणा, पंजाब, कश्मीर, हिमाचल समेत समस्त उत्तर भारत में भी वेदों के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास है। इस शाखा की संहिता, ब्राह्मण, कठोपनिषद्, गृह्यसूत्र आदि उपलब्ध हैं। काठक-गृह्यसूत्र को लोगाक्षि गृह्यसूत्र के नाम से अभिहित किया जाता है।

काठक संहिता में ५ खण्ड, ४० स्थानक, १३ अनुवचन, ८४३ अनुवाक् तथा ३०९३ मन्त्र हैं। काठक संहिता में दर्शपूर्णमास, ज्योतिष्टोम, उपस्थानादि यजमान-कर्म, आधान, काम्य-इष्टि आदि विभिन्न यागों का वर्णन है।

कपिष्ठल-कठ शाखा -

कपिष्ठल-कठ शाखा का सम्बन्ध कठ शाखा से है। चरणव्यूह में चरक शाखा के अन्तर्गत कठ, प्राच्य कठ, तथा कपिष्ठल-कठ उपशाखाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। कपिष्ठल शाखा का प्रसार कपिष्ठल

देश (वर्तमान में कैथल-हरियाणा) में होने के कारण 'कपिष्ठल' शाखा कहलाई। इस शाखा के प्रवर्तक ऋषि का उल्लेख नहीं है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में गोत्रवाची कपिष्ठल शब्द का उल्लेख "कपिष्ठलो गोत्रे च" इस सूत्र में किया है। कठ शाखा के ब्राह्मण अपने अवान्तर कपिष्ठलों को लेकर ग्रीक आक्रमण के समय पञ्जाब में रहते थे। वहाँ से आगे बढ़कर कुछ लोग कश्मीर में जा बसे।

यह संहिता अष्टक एवं अध्यायों और वर्गों में विभक्त है। संहिता के केवल प्रथम, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अष्टक उपलब्ध हैं। द्वितीय और तृतीय अष्टक उपलब्ध नहीं हैं। कपिष्ठल-कठ शाखा के गृह्यसूत्र की अपूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त है।

कृष्णयजुर्वेदीय श्रौतसूत्र

कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के छह श्रौतसूत्र हैं-(१) बौधायन, (२) भारद्वाज, (३) आपस्तम्ब, (४) सत्याषाढ, (५) वैखानस, (६) वाधूल। इनमें से बौधायन, आपस्तम्ब और सत्याषाढ श्रौतसूत्र ही प्रयोग में हैं।

बौधायन श्रौतसूत्र- बौधायन श्रौतसूत्र कृष्णयजुर्वेद का प्रमुख श्रौतसूत्र है। इसमें ३० अध्याय हैं, जिनमें दर्शपूर्णमास, अग्न्याधेय, पुनराधेय, अग्निहोत्र, वाजपेय, द्वादशाह, अश्वमेध, अतिरात्र आदि यागों का विधान तथा काठक सूत्र और शुल्ब सूत्र का विवेचन किया गया है। इसके रचयिता ऋषि बौधायन हैं, प्रसिद्ध बौधायन प्रमेय इन्हीं के द्वारा रचित है। इस श्रौतसूत्र पर भावस्वामी की टीका उपलब्ध है।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र- आपस्तम्ब श्रौतसूत्र अपने सभी चारों अंगों सहित विद्यमान है। इस कल्प में कुल ३० प्रश्न हैं। प्रश्न १ से २३ तक, प्रवर एवं होत्रक, प्रश्न २४ में परिभाषा, प्रश्न २५ से २७ में गृह्यसूत्र, प्रश्न २८-२९ में धर्मसूत्र तथा प्रश्न ३० में शुल्बसूत्र। इसके रचयिता ऋषि आपस्तम्ब हैं तथा इस पर रुद्रदत्त की सूत्रदीपिका वृत्ति तथा धूर्तस्वामी का भाष्य प्राप्त होता है।

शुक्लयजुर्वेदीय श्रौतसूत्र

शुक्ल यजुर्वेद का केवल एक ही श्रौतसूत्र उपलब्ध है- कात्यायन श्रौतसूत्र।

कात्यायन श्रौतसूत्र- यह शुक्लयजुर्वेद के मान्ध्यन्दिन और काण्व शाखा से सम्बन्धित है।इसमें कुल २६ अध्याय हैं जिनमें २३० कण्डिकाएँ हैं। यह श्रौतसूत्र विषय की दृष्टि से व्यापक तथा व्यवस्थित है। इसमें अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, पिण्डपितृयज्ञ, दाक्षायण, आग्रहायण, अग्न्याधान, पुनराधेय, चातुर्मास्य, निरूढ पशुबन्ध, अग्निष्टोम, द्वादशाह, गवामयन, वाजपेय, राजसूय, अग्निचयन, सौत्रामणी, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, पितृमेध, एकाह यज्ञ, अहीन यज्ञ, सत्र, प्रवर्ग्य यज्ञों का वर्णन है। इसके रचयिता ऋषि कात्यायन हैं तथा इस पर कर्काचार्य एवं श्रीदेव की टीकाएँ प्राप्त होती हैं।

सामवेद-

सामवेद का सम्बन्ध उपासना से है। सामवेद गायन की दृष्टि से वेदों में प्रमुख है। छान्दोग्य उपनिषद् ने गायन के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि गद्य, पद्य और गायन में गायन ही सर्वाधिक प्रभावी तथा मनोहारी होता है, इसमें भी साधारण गद्य की अपेक्षा छन्द का, छन्द की अपेक्षा काव्य का, काव्य की अपेक्षा गायन का वैशिष्ट्य अधिक है। गायन में भी गानों का आलाप विशेष प्रभाव को उत्पन्न करता है। भारतीय संगीत परम्परा विशेषतः सप्त स्वरों का मूल सामवेद है।

'साम' शब्द का अर्थ

"षोऽन्तकर्मणि" धातु से उणादि "मनिन्" प्रत्यय के जुडने से 'साम' शब्द निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है- "**स्यन्ति खण्डयन्ति दुःखानि येन तत् साम**" अर्थात् जो दुःखों का अन्त करके मन को शान्त करे, वह 'साम' है। सामवेद के पाठ और सामगान श्रवण करने से मन प्रसन्न होता है, यह विचार साम शब्द की व्युत्पत्ति से ही स्पष्ट है।

शास्त्रों के अनुसार 'साम' शब्द मुख्यतया तीन अर्थों में जानना चाहिए-

गीतिषु सामाख्या - गीतियों का नाम साम है। (जैमिनि सूत्र २.१.३६)

या ऋक् तत् साम - ऋक् का नाम साम है। (छान्दोग्योपनिषद् १.३.४)

ऋच्यध्यूढं साम – ऋचाओं पर अधिरूढ गेय मन्त्र साम कहलाता है। (छान्दोग्योपनिषद् १.६.१)

सामवेदीय शाखाएँ –

प्राचीन वाङ्मय में सामवेद की हजार शाखाएँ या मार्ग (गानविधा) कहे गये हैं- महर्षि जैमिनि ने "साम वै सहस्रवर्त्मनि" तथा महर्षि पतञ्जलि ने "सहस्रवर्त्मा सामवेदः" (महाभाष्य पस्पशाह्निक) कहकर सामवेद की एक हजार शाखाओं का उल्लेख किया है। आचार्य शौनक ने चरणव्यूह ग्रन्थ में तेरह शाखाओं का उल्लेख किया है। वर्तमान समय में मात्र तीन ही शाखाएँ प्राप्त होती हैं- कौथुम, राणायनीय, तथा जैमिनीय शाखा। कौथुम तथा राणायनीय शाखाएँ गानविधा और उच्चारण भेद से ही भिन्न हैं, जबकि जैमिनीय शाखा में मन्त्रों की संख्या और क्रम में भी भिन्नता प्राप्त होती है।

सामवेद का विभाजन

'साम' शब्द में ही सामवेद के दो प्रमुख घटकों का ज्ञान निहित है। साम, गीतियों और ऋचाओं का अभिधान है- "**गीतिषु सामाख्या**" "**या ऋक् तत् साम**" । इस प्रकार से सामवेद दो प्रमुख भागों में विभक्त है- ऋचा और गान (साम), जो क्रमशः आर्चिक (ऋचाओं से सम्बद्ध) और गान के रूप में जाना जाता है।

आर्चिक- 'आर्चिक' शब्द ऋचाओं के समूह का द्योतक है। आर्चिक के दो भाग हैं- पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में छः प्रपाठक हैं, प्रत्येक प्रपाठक दो अर्धों में विभक्त है, तथा प्रत्येक अर्ध में पाँच दशति होती हैं। दशति में प्रायः दस मन्त्र होते हैं, कहीं यह सङ्ख्या न्यूनाधिक होती है। पूर्वार्चिक में आग्नेय, ऐन्द्र, पवमान तथा आरण्यक पर्व हैं। परिशिष्ट में महानाम्नी पर्व भी प्राप्त होता है। पूर्वार्चिक में छः प्रपाठक तथा ६५० मन्त्र हैं।

उत्तरार्चिक का स्वरूप यागोपयोगी है। इसमें प्रगाथ और तृच सूक्तों का समूह है। इसमें नौ प्रपाठक हैं। प्रथम पाँच प्रपाठकों में दो-दो प्रपाठकार्ध और अन्तिम चार में तीन-तीन प्रपाठकार्ध हैं। उत्तरार्चिक में कुल मन्त्र सङ्ख्या १२२५ है। इस प्रकार सामवेद आर्चिक संहिता में १८७५ मन्त्र हैं।

सम्पूर्ण ऋक् संख्या - १८७५	
पूर्वार्चिक	मन्त्र अनुक्रम
आग्नेय काण्ड	१-११४
ऐन्द्र काण्ड	११५-४६६
पवमान काण्ड	४६७-५८५
आरण्य काण्ड	५८६-६४०
महानाम्न्यार्चिक	६४१-६५०
उत्तरार्चिक	६५१-१८७५

सामवेदीय गान भाग -

गान वस्तुतः दो प्रकार के हैं- १. प्रकृतिगान २. विकृतिगान।

प्रकृतिगान के भी दो भाग हैं- ग्रामेगेय गान (वेयगान) तथा अरण्यगेय (आरण्यक) गान, जैसा कि नाम से स्पष्ट है- ग्रामेगेय का गान ग्रामों तथा नगरों में और अरण्यगेय का गान वनों में होता था। प्रकृतिगान सप्तगानात्मक है, जिसमें से प्रथम चार गान (गायत्र, आग्नेय, ऐन्द्र और पवमान) ग्रामेगेयगान के अन्तर्गत हैं और अरण्यगेय गान के अर्क, द्वन्द्व और व्रत- ये तीनों पर्व मिलकर एक गान माने जाते हैं। प्रकृतिगान का षष्ठ गान है- शुक्रियपर्व और महानाम्नी सप्तम गान, जो परिशिष्ट के रूप में मान्य है, जैसा कि सर्वानुक्रमणी में कहा गया है-

"गायत्रं प्रथमं गानम् आग्नेयं तु द्वितीयकम्।

तृतीयमैन्द्रं गानं स्यात् पावमानं चतुर्थकम्॥

अर्कद्वन्द्वव्रतं चेति त्रीणि पर्वाणि पञ्चमम्।

षष्ठं च शुक्रियं गानं महानाम्नीति सप्तमम्॥

एतानि सप्तगानानि प्रकृतेः कथितानि च।" (ग्रामेगेयगान भूमिका पृष्ठ सं. ३)

विकृति गान -

विकृति गान दो प्रकार का है- ऊह तथा ऊह्यगान (रहस्य)। ऊहगान में सात पर्व हैं- दशरात्र, संवत्सर, एकाह, अहीन, सत्र, प्रायश्चित्त और क्षुद्रपर्व। ऊह्यगान में भी सात ही पर्व हैं और नामकरण भी ऊह की ही भाँति हुआ है। ऊहगान २३ प्रपाठकों और ऊह्यगान १६ प्रपाठकों में विभक्त है।

गानभाग	सङ्ख्या
गायत्र गान	१
ग्रामेगेय गान	११९७
आरण्यक गान	२९६
ऊहगान	९३६
ऊह्यगान (रहस्यगान)	२०९
कुल गान	२६३९

ऊह और ऊह्यगानों की व्यवस्था वस्तुतः सोमयागों के अनुरूप है। इस क्रम से यज्ञों में उद्गातृ-मण्डल इनका गान करता है। 'ऊह' और ऊह्य का अर्थ है विचारपूर्वक विन्यास। ऊहगान में आने वाले सभी सामों के आधारभूत साम प्रकृतिगान में तथा ऊह्यगान में आने वाले सभी सामों के आधारसाम (योनिगान) आरण्यकगान में हैं। याग में उद्गातृ-मण्डल के विभिन्न सदस्यों के द्वारा अपनी-अपनी गानभक्ति का विचारपूर्वक गान ऊह का एक प्रकार है। इसी प्रकार निधन भाग (गान मन्त्र का अन्तिम पद) के सम्बन्ध में भी यथास्थान विचार-विन्यास ऊहन-प्रक्रिया के अन्तर्गत है। कौथुम और राणायनीय शाखाओं में गान संख्या एक ही है, परन्तु जैमिनीय में गान संख्या भिन्न है।

गान	कौथुम/राणायनीय	जैमनीय
ग्रामेगेय (प्रकृति)	११९७	१२३२
अरण्यगेय (आरण्यक)	२९५	२९१
ऊह	१०२६	१८०२
ऊह्य (जैमिनीय- ऊषाणी)	२०५	३५६
कुल योग	२७२२	३६०१

सामवेदीय श्रौतसूत्र

सामवेद के मुख्य श्रौतसूत्र- आर्षेयकल्प, लाट्यायन, द्राह्यायण और जैमिनीय हैं, इसके अतिरिक्त अनेक उपसूत्र ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं- क्षुद्रकल्पसूत्र, निदानसूत्र, कल्पानुपदसूत्र इत्यादि। इनमें मुख्य रूप से उद्गातृगण के कर्तव्य तथा प्रसङ्गवश अन्य ऋत्विजगण के कर्तव्यों का विवरण प्राप्त होता है।

आर्षेयकल्प या मशकसूत्र-इसक रचयिता मशक या मशक गार्ग्य माने जाते हैं। इसमें ग्यारह अध्याय हैं। यह पूर्णतः ताण्ड्य ब्राह्मण के क्रम का अनुसर्त्ता है। इसमें गवामयन सत्र, चातुर्मास्य, अहीनयाग, सत्रयाग आदि का प्रतिपादन है। इस पर वरदराज की विवृति नामक टीका उपलब्ध होती है।

लाट्यायन श्रौतसूत्र- सामवेदीय श्रौतसूत्रों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें १० प्रपाठक तथा कुल २६४१ सूत्र हैं। इसके रचयिता ऋषि लाट्यायन हैं तथा अग्निस्वामी, रामकृष्णदीक्षित, सायणाचार्य जी के भाष्य प्राप्त होते हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से यह ताण्ड्य ब्राह्मण का अनुसरण करता है। इसमें धनञ्जय्य, गौतम, कौत्स, वार्षगण्य, लाभकायन आदि आचार्यों के मत उद्धृत हैं।

द्राह्यायण श्रौतसूत्र- इस सामवेदीय श्रौतसूत्र के अन्य नाम हैं- छान्दोग सूत्र और प्रधान सूत्र। इसका प्रचार दक्षिण भारत में अधिक है, मुख्यरूप से कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश। द्राह्यायण श्रौतसूत्र में ३१ पटल (अध्याय) हैं। इसके रचयिता द्राह्यायण हैं तथा आचार्य धन्विन् का भाष्य प्राप्त होता है।

जैमिनीय श्रौतसूत्र- यह सामवेद को जैमिनीय शाखा से संबद्ध है। इसके रचयिता जैमिनि मुनि माने जाते हैं। इसकी शैली ब्राह्मण ग्रन्थों के तुल्य है। बौधायन श्रौतसूत्र के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसमें ताण्ड्य ब्राह्मण को भी उद्धृत किया गया है। यह श्रौतसूत्र ३ खण्डों में विभाजित है- सूत्रखण्ड, कल्पखण्ड, पर्याध्याय या परिशेष खण्ड। इसमें १८ अध्याय हैं।

अथर्ववेद

अथर्व शब्द थुर्वी धातु से निष्पन्न है। थुर्वी धातु का हिंसा अथवा गति के अर्थ में प्रयोग है। '**न थर्वः-अथर्वः**' अथर्व का तात्पर्य अहिंसा अथवा स्थिरता से है। व्याकरण महाभाष्य के अनुसार "**नवधा अथर्वणः**" अर्थात् अथर्ववेद की नौ शाखाएँ हैं- पैप्पलाद, शौनक, तौद, मौद, जाजल, जलदा, ब्रह्मवदा, चारणवैद्य और देवदर्श।

वर्तमान में अथर्ववेद की दो शाखाएँ उपलब्ध हैं- शौनक और पैप्पलाद। दोनों में २०-२० काण्ड हैं। अथर्ववेद शौनक शाखा में क्रमशः सूक्त, अनुवाक, प्रपाठक, काण्ड इस प्रकार का विभाजन है। कुल सूक्तों की संख्या ७३१ है। अनुवाकों की संख्या १११, प्रपाठकों की संख्या ३६ है। २० काण्डों में कुल ५९८७ मन्त्र हैं। अथर्ववेद पैप्पलाद शाखा में २० काण्ड, ९२३ सूक्त, १६१ अनुवाक और ७८५० मन्त्र हैं। इनमें मन्त्रों का विभाजन क्रम एक विशिष्ट शैली का है। प्रथम काण्ड से पञ्चम काण्ड तक प्रत्येक सूक्त

लगभग ४ से १४ मन्त्र के हैं। षष्ठ काण्ड से १५ काण्ड तक ६ से १६ मन्त्र का सूक्त है । १६ से २० काण्ड तक बड़े-बड़े सूक्तों का सङ्कलन है। जिसमें १० से २९ मन्त्र का सूक्त है।

अथर्ववेद भाष्य के मङ्गलाचरण में सायणाचार्य जी का वाक्य है-

व्याख्याय वेदत्रितयम् आमुष्मिकफलप्रदम्।

ऐहिकामुष्मिकं चतुर्थं व्याचिकीर्षति ॥

आमुष्मिक के साथ हमारे ऐहिक जीवन में जो कुछ भी इष्ट है उसकी प्राप्ति एवं जो अनिष्ट है उसके परिहार हेतु अथर्ववेद में काण्डगत अनेक विषयों से सम्बन्धित सूक्तों की प्राप्ति होती है, जिसमें निम्नलिखित प्रमुख विषय हैं -

प्रथम काण्ड - मेधाजनन, अपां भेषजम्, ज्वर नाशन, रोग उपशमन, नारी सुखप्रसूति, विद्युत, पुष्टि कर्म, रुधिर रोकने और स्राव ठीक करने हेतु धमनीबन्धन, अलक्ष्मीनाशन, श्वेतकुष्ठ नाशन, राष्ट्र का अभिवर्धन, मधुविद्या आदि।

द्वितीय काण्ड - सुरक्षा, पशुओं का संवर्धन, क्रिमियों का नाशन, बल की प्राप्ति, अभय की प्राप्ति, विश्वकर्मा आदि।

तृतीय काण्ड - शत्रु-सेना का सम्मोहन, स्वराज्य में राज्य की पुनः स्थापना, राष्ट्र का राजा और शासन करने वाला, राष्ट्रधारण, रायस्पोष प्राप्ति, शालानिर्माण, व्यापार, कृषि, वनस्पति, रयि संवर्धन, समृद्धि प्राप्ति, आत्मरक्षा, पशुपोषण, सांमनस्य आदि ।

चतुर्थ काण्ड - सर्पविषनाशन, गर्भाधान, रक्षोघ्न, कुष्ठ-तक्म-नाशन, लाक्षा, वृषरोग-शमन, शत्रुसेना त्रासन, अग्नि, नवशालाघृतहोम।

षष्ठ काण्ड - अक्षिरोगभैषज, गर्भदृंहण, बलासनाशन, केशवर्धनी औषधि, अरिष्टक्षयण, अभय, परस्परचित्तैकीकरण, सर्पों की रक्षा, जलचिकित्सा, अन्नचिकित्सा, संग्रामजयः, विषदूषण, पिप्पलीभैषज्य, सौभाग्यवर्धन, अन्नसमृद्धि ।

सप्तम काण्ड - सरस्वती, दुःस्वप्ननाशन, गण्डमाला चिकित्सा, राष्ट्रसभा, अमावास्या-पूर्णिमा।

अष्टम काण्ड - दीर्घायु की प्राप्ति, औषधियाँ, विराट॥

नवम काण्ड - मधुविद्या, शाला, अतिथिसत्कार, गौ।

दशम काण्ड - सर्पविष दूरीकरण, मणिबन्धन, विजयप्राप्ति, वशा गौ।

एकादश काण्ड - ब्रह्मौदन, रुद्र, प्राण, ब्रह्मचर्य।

द्वादश काण्ड - भूमि सूक्त से सम्बन्धित है इसके साथ गौ का भी वर्णन प्राप्त होता है।

त्रयोदश काण्ड - अध्यात्म प्रकरण के नाम से जाना जाता है।

चतुर्दश काण्ड - विवाह प्रकरण की विशेषता से प्रसिद्ध है।

पञ्चदश काण्ड - व्रात्य काण्ड भी कहते हैं, व्रात्य शिव का नाम है।

षोडश काण्ड - सभी प्रकार के दुःखों से निवृत्ति हेतु विषय वर्णित है।

सप्तदश काण्ड - सभी प्रकार के अभ्युदय की कामना हेतु सूर्य आराधना के मन्त्र इस काण्ड में प्राप्त होते हैं।

अष्टादश काण्ड - यह पितृमेध अर्थात् पितरों से सम्बन्धित काण्ड है। पितृशान्ति, पितरों के आशीर्वाद प्राप्ति हेतु यह काण्ड है।

एकोनविंशति काण्ड - पुरुष सूक्त, नक्षत्र सूक्त, शान्ति सूक्त, काल सूक्त, औदुम्बर मणि, दर्भ मणि, शङ्खमणि, शतवार मणि, जङ्गिड मणि, अस्तृत मणि, वेदमातासूक्त।

विंश काण्ड - सोमयाग से सम्बन्धित सूक्त प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार लौकिक ज्ञान विज्ञान की विपुल सामग्री इस वेद में उपलब्ध होती है।

अथर्ववेदीय श्रौतसूत्र

वैतान श्रौतसूत्र- यह अथर्ववेद का एकमात्र श्रौतसूत्र है। यह गोपथ ब्राह्मण पर आधारित है। इसके पूर्वार्ध पर कात्यायन श्रौतसूत्र का बहुत प्रभाव है। इस पर कौशिक गृह्यसूत्र का भी बहुत प्रभाव है। इसमें ८ अध्याय और ४३ कण्डिकाएँ हैं। इसके प्रतिपाद्य विषय ये हैं- परिभाषा, दर्शपूर्णमास, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, आग्रयणीय, इष्टि, चातुर्मास्य, पशुबन्ध, अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, वाजपेय, अप्तोर्याम, अग्निचयन, सौत्रामणी, गवामयन, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, एकाह, अहीन याग और काम्य इष्टियाँ।

1.2 श्रौतसूत्रों का इतिहास

संहिता की अपेक्षा ब्राह्मण ग्रन्थों में श्रौतकर्म की जानकारी अधिक विस्तृत देखी जाती है। उनमें श्रौत की परम्परा, प्रयोग, यज्ञ के प्रकार, यज्ञ कब किये, किसने किये, आदि विषय देखने में आते हैं। इससे यही मानना चाहिये कि कल्प का मूल आधार संहिता और ब्राह्मण है।

वेदांगों की सहायता से भी वेदप्रतिपादित कर्म की प्रक्रिया कालक्रमानुसार दुर्बोध होती गई है जिसका मुख्य कारण भारतीय जनता में विविध जातियों का समय समय पर आवागमन है। अतएव कर्मकाण्ड की प्रक्रिया को व्यवस्थित रूप देने के उद्देश्य से श्रौतसूत्रों की रचना हुई है।

श्रौत काल से पूर्व गुरुमुख से उच्चरित मन्त्र को अध्येता सुनकर कण्ठ कर लेते थे। मन्त्र के विधान को भी समझकर स्वायत्त कर लेते थे। उनकी बुद्धि कुशाग्र थी और इस प्रकार उनके लिए श्रौतसूत्र की अपेक्षा नहीं थी। कालान्तर में बुद्धि वैभव कम होने लगा तथा भविष्य में लोगों को क्रमबद्ध विधान मिल सके, एतदर्थ ऋषिगणों ने श्रौतसूत्रग्रन्थों के निर्माण की आवश्यकता समझी। तदनुसार ऋषिगणों ने प्रत्येक वेद के सूत्र (श्रौत-गृह्य-धर्म-शुल्ब) का निर्माण किया।

1. 3 वेदों में श्रौत परम्परा

श्रौतयाग की परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। सर्वप्रथम ऋग्वेद में यज्ञ का नाम और उसका संक्षिप्त विवरण देखने में आता है। ऋग्वेद १०/९०/१६ के कथनानुसार सर्वप्रथम देवताओं ने याग किया था।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

वहाँ यज्ञिय हविर्द्रव्य, यजमान और याग आदि का नाम देखने को मिलता है। उस यज्ञ से क्या उत्पन्न हुआ इसका भी वर्णन वहाँ है। प्राचीनता की दृष्टि से यहीं से श्रौतयाग की जानकारी का श्रीगणेश होता है। वहाँ याग का विशेष विवरण न मिलने के कारण यही प्रतीति होती है कि उन ऋषि लोगों ने इन श्रौतयागों का समस्त विधान ब्राह्मण आदि ग्रन्थों के आधार पर कण्ठस्थ सुरक्षित रखा था।

1.4 श्रौतसूत्रों का प्रयोजन

श्रौतसूत्र में छोटे बड़े अनेक श्रौतयाग और उन्हें करने का विधान बताया है। श्रौतयाग का विधान अति जटिल है। प्रारम्भ से अन्त तक का श्रौतकर्म विधान अनेक नियमों में आबद्ध है। उदाहरणार्थ- **"उदिते जुहोति" उदिते सूर्ये ब्रह्मवरणाद्युपक्रमः** अर्थात् सूर्योदय होने पर अग्निहोत्र हवन या याग के निमित्त ऋत्विजों का वरण करना चाहिये।

पुरोडाश बनाने के लिए प्रत्येक पुरोडाश के निमित्त चार मुट्ठी आटा लेना चाहिये। उनमें भी प्रथम तीन मुट्ठी समन्त्रक और चौथी मुट्ठी मन्त्र रहित ग्रहण करनी चाहिये।

याग करने के निमित्त स्रुचियों को लेकर अध्वर्यु जब जुहोतिस्थान से यजतिस्थान पर जावे तब उसे बायाँ पैर आगे रखते हुए जाना चाहिये। यजतिस्थान से लौटते समय दाहिना पैर आगे रखते हुए लौटना चाहिये। साथ ही उसे यह भी स्मरण रखना चाहिये कि किसी भी समय वह अपना पैर वेदि में न रखे। इस प्रकार पद पद पर कही गयी विधान की जटिलता का निर्वाह श्रौतसूत्र के बिना नहीं हो सकता। श्रौतयाग विधान पूर्वक हो सके यही श्रौतसूत्र का प्रयोजन है। निष्कर्ष यह है कि दुरूह यागविधानों में सौकर्य हो, इस निमित्त ऋषियों ने श्रौतसूत्रों का उपदेश दिया।

इकाई –2

श्रौतयज्ञ का परिचय

यज्ञ शब्द का मूल अर्थ-

'यज्ञ' शब्द वैयाकरणों और नैरुक्त आचार्यों के मतानुसार देवपूजा, संगतिकरण और दान अर्थवाली 'यज्' धातु से 'नङ्' प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। तदनुसार जिस कर्म में देवों-अग्न्यादि प्राकृतिक तत्त्वों की पूजा यथायोग्य गुण संवर्धन तथा प्रत्यक्ष देवों-विद्वानों की पूजा-सत्कार; संगतिकरण-अग्न्यादि प्राकृतिक तत्त्वों के साथ यथायोग्य संगति, जिससे अनेकविध शिल्पकार्यों की सिद्धि होती है, तथा विद्वानों महात्मा पुरुषों का सङ्ग, परब्रह्म के साथ आत्मा का संयोग वा प्राप्ति; दान-जल वायु आदि प्राकृतिक तत्त्वों की शुद्धि वा गुण-संवर्धन के लिए अग्नि में घृत आदि उत्तमोत्तम सुगन्धित पुष्टिकारक आरोग्यवर्धक पदार्थों का त्याग प्रक्षेप, तथा संसारस्थ प्राणियों के लाभ वा उत्कर्ष के लिए विद्या और धन आदि का विनियोग किया जाता है, वे सब कर्म 'यज्ञ' शब्द से परिगृहीत होते हैं।

यज्ञ शब्द के इसी मूल अर्थ को लेकर लोक में 'यज्ञ' शब्द का बहुधा प्रयोग देखा जाता है। भगवद्गीता ४.२८ में द्रव्ययज्ञ तपोयज्ञ स्वाध्याययज्ञ ज्ञानयज्ञ का उल्लेख मिलता है। जिन यज्ञों के विषय में हम पढेंगे, वे 'द्रव्य यज्ञ' कहलाते हैं, क्योंकि इन यज्ञों में देवता को उद्देश्य कर के घृतादि पदार्थों का अग्नि आदि में त्याग किया जाता है- **द्रव्यं देवतात्यागश्च ।** कात्यायन श्रौतसूत्र- १.२.२

2.1 श्रौत यज्ञ तथा इसके प्रकार

द्रव्ययज्ञ श्रौत और स्मार्त्त भेद से अनेक प्रकार के हैं। जिन यज्ञों का श्रुति- मन्त्र और ब्राह्मण में साक्षात् उल्लेख मिलता है, वे 'श्रौतयज्ञ' कहलाते हैं। जिन यज्ञों का ऋषि स्मृतियों में विधान करते हैं, वे 'स्मार्त्त' कहलाते हैं। गृह्यसूत्रोक्त यज्ञ भी स्मार्त्त यज्ञों में ही गिने जाते हैं।

नित्य, नैमित्तिक और काम्य इन भेदों से श्रौतकर्म तीन प्रकार के माने जाते हैं।

- **नित्य- यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति, यावज्जीवं दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत** और **ताभ्यां यावज्जीवं यजेत, त्रिशतं वा वर्षाणि, जीर्णो वा विरमेत** इत्यादि प्रमाणों से जिस कर्म का अनिवार्य रूप से करना विहित है, वे नित्य कर्म कहे जाते हैं। उनके न करने से प्रत्यवाय का भागी होना पडता है। जैसे- अग्निहोत्र-हवन, दर्शपौर्णमास याग प्रभृति।
- **नैमित्तिक-** जिस अग्निहोत्री के घर में आग लग जाय वह अग्निदेवता-निमित्तक आठ कपाल का पुरोडाश इष्टि में करे (**यस्य गृहान्दहत्यग्नये क्षामवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेत्**(, इत्यादि वाक्यों से विहित जो कर्म हैं वे नैमित्तिक कहे जाते हैं।

- **काम्य-** किसी प्रकार की कामना से प्रेरित होकर जो कर्म किया जाता है वह काम्य-कर्म है। जिसको श्री, राष्ट्र, मित्र और आयुष्य की कामना हो वह **मित्रविन्दा** नामक इष्टि करे (**मित्रविन्दा श्रीराष्ट्रमित्रायुष्कामस्य**)। **कारीर्या यजेत वृष्टिकाम:** वृष्टि की आवश्यकता हो तो **कारीरी** नामक इष्टि करे। इस प्रकार किसी कामना विशेष से किया हुआ कर्म काम्य कर्म कहा जाता है।

पुनः गोपथ ब्राह्मण और स्मृतिवाङ्मय में श्रौत-स्मार्त्त कर्मों के २१ प्रकार बताए गए हैं- गोपथ ब्राह्मण में **अग्निर्यज्ञं त्रिवृतं सप्त तन्तुम्** (पैप्पलाद शाखा ५.२८.१) मन्त्र के निर्देशपूर्वक २१ प्रकार के यज्ञों का वर्णन किया है। वे २१ प्रकार के यज्ञ हैं- ७ पाकयज्ञ, ७ हविर्यज्ञ और ७ सोमयाग। गोपथ ब्राह्मण में आगे २.५.२५ में इन के नामों का भी उल्लेख किया है। इन में ७ पाकयज्ञ स्मार्त्त हैं, शेष ७ हविर्यज्ञ तथा ७ सोमयाग श्रौत हैं। इसी प्रकार गौतम धर्मसूत्र में भी उल्लेख मिलता है। इन्हें पाकसंस्था, हविःसंस्था और सोमसंस्था भी कहा जाता है। इनका विवरण इस प्रकार है-

पाकसंस्था	हविःसंस्था	सोमसंस्था
औपासन होम	अग्निहोत्र	अग्निष्टोम
वैश्वदेव	दर्शपूर्णमास	अत्यग्निष्टोम
पार्वण	आग्रयण	उक्थ्य
अष्टका	चातुर्मास्य	षोडशी
मासि श्राद्ध	निरूढपशुबन्ध	वाजपेय
श्रवणा	सौत्रामणी	अतिरात्र
शूलगव	पिण्डपितृयज्ञ	अप्तोर्याम

2.2 श्रौत यज्ञ का अधिकारी

श्रौतसूत्र में स्पष्टतया यह कहा गया है कि वेद के अध्ययन के अनन्तर वेद में प्रतिपादित अनुष्ठान को करने का अधिकार प्राप्त होता है। श्रौतयज्ञ का अधिकारी कृतदारकर्म (विवाहित) पुरुष ही होता है, क्योंकि श्रौतकर्मों में यजमान और उसकी पत्नी दोनों से क्रियमाण कर्मों का निर्देश उपलब्ध होता है। पूर्व-मीमांसा के व्याख्याग्रन्थों में इस विषय का एक वचन उद्धृत मिलता है। वह इस प्रकार है- **जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत**। इसका भाव है- जिसको पुत्र उत्पन्न हो गया है और केश काले हैं, वह अग्नि का आधान करे।

2.3 श्रौतयज्ञ का महत्त्व एवं लोकमान्यता

श्रौतयागों की अत्यन्त प्राचीनता और लोकप्रियता के अनेकों उदाहरण संस्कृत वाङ्मय में प्राप्त होते हैं। प्राचीन काल से लेकर मध्ययुग तक राज्यादि ऐश्वर्य, प्रजा की समृद्धि और स्वर्ग की कामना से राजाओं ने अति विशाल यागों का सम्पादन किया है।

संसार में प्रत्येक व्यक्ति सुख की अभिलाषा रखता है। मनुष्य अथवा पशु कोई भी हो सुख की अपेक्षा सभी को रहती है। जब मानव अपनी चाही वस्तु को पाने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर लेता है और उसे सफलता नहीं मिलती तब दैवी शक्ति की ओर दौड़ पड़ता है। वह अपने पूज्य जनों से सम्मति भी लेता है। हमारे ऋषि, मुनि के निकट जाकर कोई पूछता है और दुःख निवृत्तिपूर्वक सुख की कामना करता है, तो वे परोपकारी महात्मा लोग दया करके उसका उपाय बतलाते हैं। तदनुसार करने से मानव को अभिलषित वस्तु की प्राप्ति होती है। हमारा श्रौतसाहित्य भी इस प्रकार के उदाहरणों से पूर्ण है। उसमें अनेक प्रकार के उपाय कहे हैं। यदि पुत्र की कामना हो तो पुत्रेष्टि, सुवर्ण की अभिलाषा हो तो हिरण्यलाभकामेष्टि, राष्ट्र, मित्र और दीर्घायुष्य की इच्छा हो तो मित्रविन्देष्टि और स्वर्ग की कामना हो तो अग्निष्टोमयाग करना चाहिए।

संसार में सबसे बड़ा और महत्त्व का स्थान वही है जहाँ से शाश्वत सुख और शान्ति प्राप्त हो सके। श्रौतानुष्ठान से वह भी सुलभ है। मनुष्य अपने प्रयत्न से जब थक जाता है और नैराश्य का अनुभव करने लगता है तब वहां जाता है जहाँ से उसे सुख और शान्ति मिलने का भरोसा रहता है। मनुष्य मात्र के लिए वह स्थान अग्नि की उपासना है। इसकी छाया में मनुष्य सब कुछ पा सकता है। श्रोतयागों में दक्षिणा का वैपुल्य है। यजमान् जनता से वह याग सामग्री सञ्चित करता है। उस समय लोगों को यह दृढ़ विश्वास था कि सामग्री के द्वारा याग की सहायता करने से उसका हित होगा। ऋत्विज् परिश्रम करके प्रयोगों की तैयारी करते थे और याज्ञिक यजमान के कथनानुसार श्रद्धा और भक्ति पुरस्सर आर्त्विज्य करते थे। धनिक लोग धन के द्वारा श्रौतयाग की सर्वविध सहायता करते थे। क्षत्रिय राजा लोग भी अपनी आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार के यागों को करते थे और याग करने वालों की पूर्णरूप से सहायता करते थे।

देवताओं को श्रौतयाग बहुत प्रिय है। याज्या और पुरोनुवाक्या के पाठ होने पर देवगण याग में आते हैं और प्रसन्न होकर अपना हविर्भाग ग्रहण करते हैं। यदि हम लोग अपना कल्याण चाहें तो उसकी सिद्धि के निमित्त एकमात्र श्रौतयाग का ही शरण लेना चाहिए। वस्तु स्थिति यह है कि प्रजा का अनुरञ्जन करना प्रत्येक राजा का कर्त्तव्य है। सृष्टि के प्रारम्भ काल से यह देखने में आता है कि प्रत्येक राजा प्रजा के हितसाधन में लीन है। उसी तरह देवता भी मानव के हित में लीन है। मानव यज्ञ के द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट करता है और देवता लोग मानव का कल्याण करते हैं।

हमारा प्राचीन साहित्य पूरी तरह से इस विषय का पोषक है। इसके सिवाय श्रौतयाग से ही हमारा कल्याण है। इसका कारण यह है कि प्राणीमात्र के लिए भोजन की आवश्यकता है। मनुष्य के लिए अन्न सर्वश्रेष्ठ खाद्य है। अन्न की उत्पत्ति वृष्टि, भूमि, वायु, आतप और बीज से होती है। वृष्टि बादलों से होती है। मेघनिर्माण में धूम भी आवश्यक है। यहाँ पर धूम कहने से आधुनिक चिमनियों का धूम नहीं अपितु श्रौत याग का धूम अपेक्षित है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- "यज्ञाद् भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसम्भवः।" यज्ञ करने से वृष्टि होती है और वृष्टि से अन्न की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार पवित्र धूम से उपयुक्त जल की वृष्टि होती है और उत्तम जल से उत्तम और पर्याप्त अन्न पैदा होता है। श्रौतयाग से हम प्राणियों का सभी प्रकार का कल्याण हो सकता है।

इकाई-3

श्रौतकर्म का त्रैविध्य

यज्ञों का विस्तार अग्निहोत्र से लेकर सहस्र संवत्सरसाध्य क्रतुपर्यन्त है। वेद की शाखाओं ब्राह्मण-ग्रन्थों और श्रौतसूत्रों में इन्हीं अग्निहोत्र से लेकर सहस्र संवत्सरसाध्य पर्यन्त यज्ञों का उल्लेख मिलता है । उदाहरण के लिए कात्यायन श्रौतसूत्र में उक्त प्रमुख यज्ञों का निर्देश इस प्रकार है-

कात्यायन श्रौतसूत्र में अध्यायानुसार निर्दिष्ट श्रौत-याग

श्रौतयाग	अध्याय
अग्न्याधान	चतुर्थ
अग्निहोत्र	चतुर्थ
दर्शपूर्णमासेष्टि	द्वितीय से चतुर्थ
दीक्षायणीयेष्टि	चतुर्थ
आग्रयणेष्टि	चतुर्थ
दर्विहोम. कैडिनीयेष्टि, आदित्येष्टि, मित्रविन्देष्टि	पञ्चम
चातुर्मास्य	पञ्चम
निरूढ पशुबन्ध	षष्ठ
सोमयाग	सप्तम से एकादश
एकाह	द्वादश एवं द्वार्विंश
द्वादशाह	द्वादश
सत्ररूप द्वादशाह	द्वादश
गवामयन	त्रयोदश
वाजपेय	चतुर्दश
राजसूय	पञ्चदश
अग्निचयन	षोडश से अष्टादश
सौत्रामणि	एकोनविंश
अश्वमेध	विंश

पुरुषमेध	एकविंश
अभिचार-याग	द्वाविंश
अहीन- अतिरात्र	त्रयोविंश
सत्र (द्वादशाह से सहस्र- संवत्सरान्त)	चतुर्विंश
प्रवर्ग्य	षड्विंश

श्रौतकर्म का त्रैविध्य

उपर्युक्त होम, इष्टि और याग ये तीन प्रकार के समस्त श्रौतयज्ञ प्रक्रिया की दृष्टि से तीन विभागों में विभक्त हैं-

- प्रकृतियाग
- विकृतियाग
- प्रकृति-विकृतियाग अथवा उभयात्मक

प्रकृति कर्म

जिस कर्म के वर्णन करते समय समस्त अंगों का सविस्तार विवरण किया जाता है उसे प्रकृति कर्म कहते हैं-**यत्र समग्राङ्गोपदेशः सा प्रकृतिः(मीमांसान्यायप्रकाश)**। उन्हें प्रकृति होम, प्रकृति इष्टि या प्रकृति याग भी कहा जाता है। उदाहरणार्थ अग्निहोत्र हवन अन्य हवन की, दर्शपौर्णमासेष्टि अन्य इष्टियों की और अग्निष्टोमयाग अन्य यागों की प्रकृति है।

विकृति कर्म

जिनका वर्णन करते समय उसमें होने वाले विशेष कृत्यों का विवरण किया जाता है उन्हें विकृति कहते हैं। इनमें होने वाले समस्त सामान्य कृत्य प्रकृति के अनुसार होते हैं। उदाहरण के लिए उपयङ्होम अग्निहोत्रहोम की, मित्रविन्देष्टि पौर्णमासेष्टि की और अग्निष्टोम के अनन्तर होने वाले याग अग्निष्टोमयाग की विकृति है।

उभयात्मक (प्रकृति-विकृति) कर्म

प्रकृति कर्म और विकृति कर्म के अतिरिक्त कुछ कर्म ऐसे भी कहे गये हैं जो प्रकृति और विकृति उभयात्मक कर्म कहे जाते हैं। उदाहरण के लिए अग्निष्टोम याग उभयात्मक है। इसमें होनेवाला अग्निषोमीय याग पौर्णमास याग की विकृति होने पर भी अग्निष्टोम याग के अनन्तर होने वाले यागों का प्रकृतिरूप है। फलतः अग्निष्टोम याग में प्रकृति और विकृति इन दोनों के लक्षण रहने के कारण इसे उभयात्मक कहते हैं।

कतिपय प्रकृति कर्म और उनके विकृति कर्म -

प्रकृति कर्म	विकृति कर्म
दर्शपूर्णमासयाग	अन्य इष्टियाँ और दर्विहोम
सान्नाय्यवती दर्शेष्टि	अन्य पयोद्रव्यवान् याग
अग्नीषोमीय पशुयाग	अन्य पशुयाग
अग्नीषोमीयसवनीय पशुयाग	एकादशिनी प्रभृति पशुयाग
एकादशिनी पशुयाग	पशुगणयाग
चातुर्मास्ययाग का वैश्वदेवपर्व	वरुणप्रघास,साकमेध,शुनासीरीय आदि पर्व
सोमयाग का अवभृथयाग	अन्य अवभृथयाग
प्रातःसवन	अन्य सवन
अंशु और अदाभ्यग्रह	अन्य ग्रह
सुपर्णचिति	अन्य चिति
ज्योतिष्टोम	एकाह और द्वादशाह
अग्निष्टोम	शेष सोम संस्था
द्वादशाह सत्र	अन्य सत्र
गवामयन सत्र	संवत्सरसत्र प्रभृति अन्य सत्र

इकाई-4

आर्त्विज्य (यज्ञों के ऋत्विज् और उनके कर्तव्य)

ऋत्विजि हि सर्वो यज्ञः प्रतिष्ठितः(ऐत. ब्रा.) इस वचन के अनुसार किसी याग को व्यवस्थित और साङ्गोपाङ्ग करने का उत्तरदायित्व ऋत्विजों पर निर्भर है।

अग्न्याधेयं पाकयज्ञान् अग्निष्टोमादिकान् मखान्।
यः करोति वृतो यस्य स तस्यर्त्विगिहोच्यते॥ मनु० २.१४३
यः पाकयज्ञादिकं वृतः करोति स ऋत्विक्। या०स्मृ० मिताक्षरा २.३५

यजमान के अनुकूल या प्रतिकूल फल को देने वाले याग का विधान करने का सामर्थ्य वरण किए हुए ऋत्विज् में है इसलिए ऋत्विजों को बहुत सावधानी से याग कार्यों को करना चाहिए।

ऋत्विजों की आवश्यक सङ्ख्या

किस याग में कितने ऋत्विज् अपेक्षित हैं, इसकी भी जानकारी आवश्यक है। वह इस प्रकार है-

१. अग्निहोत्र-हवन - १
२. दर्शपौर्णमास याग - ४
३. चातुर्मास्य याग - ५
४. सौत्रामणी याग - ६
५. अग्निष्टोम याग - १६
६. शेषयाग सत्र आदि – १६

यहाँ ऋत्विजों की जो संख्या दिखलाई है, वह प्रमुख ऋत्विजों की है। इसके अतिरिक्त अग्निष्टोम प्रभृति यागों में अन्य ऋत्विज् और याग के सहायक होते हैं, उन्हें उपर्त्विज् कहते हैं। जैसे- उपोद्गाता, चमसाध्वर्यु आदि।

ऋत्विजों के गण

श्रौतयाग में ऋत्विजों की संख्या अधिकाधिक षोडश(१६) है। श्रौतयाग चाहे जितना बड़ा हो ऋत्विजों की संख्या में इससे अधिक वृद्धि नहीं हो सकती। इन सोलह ऋत्विजों में भी परस्पर गौण मुख्यभाव है। तदनुसार चार गण कहे गये हैं। प्रत्येक गण में चार व्यक्ति होते हैं। उस गण के नाम एवं उनका क्रम इस प्रकार है-

होतृगण (ऋग्वेद)	अध्वर्युगण (यजुर्वेद)	उद्गातृगण (सामवेद)	ब्रह्मगण (अथर्ववेद)
होता	अध्वर्यु	उद्गाता	ब्रह्मा
मैत्रावरुण(प्रशास्ता)	प्रतिप्रस्थाता	प्रस्तोता	ब्राह्मणाच्छंसी
अच्छावाक्	नेष्टा	प्रतिहर्ता	आग्नीध्र
ग्रावस्तुत्	उन्नेता	सुब्रह्मण्य	पोता

ऋत्विग् दक्षिणा

सोमयाग में ऋत्विजों की विशेष दक्षिणा देने का विधान श्रौतसूत्रों में मिलता है। देय दक्षिणा ऋत्विजों के कार्यानुसार चार प्रकार से विभाजित की गई है, एवं दक्षिणानुरूप ऋत्विजों की चार संज्ञाएँ हैं-

१. पूर्णी २. अर्धी ३. तृतीयी ४. पादी

अध्वर्युगण को पूरी दक्षिणा दी जाती है इसलिए उन्हें 'पूर्णी' कहा जाता है। अध्वर्यु की आधी मात्रा में ब्रह्मगण को दक्षिणा प्राप्त होती है अतः 'अर्धी' कहलाते हैं। पूर्णी से तृतीयांश दक्षिणा होतृगण को दी जाने से उनकी संज्ञा 'तृतीयी' है, एवं पूर्णी की अपेक्षा चौथाई दक्षिणा प्राप्त होने से उद्गातृगण को 'पादी' कहा जाता है। उदाहरणार्थ, अग्निष्टोम याग में एक सौ गौ दक्षिणा देने का विधान है। दक्षिणा-विभाग का क्रम इस प्रकार होगा- अध्वर्युगण के चार ऋत्विजों को बारह-बारह गौ देने से ४८ हुई। ब्रह्मगण के चार ऋत्विजों को प्रथम से आधी छह-छह गौ देने से २४ हुई। होतृगण के चार ऋत्विजों को प्रथम से तृतीयांश ४-४ गौ देने से १६ हुई और उद्गातृगण के चार ऋत्विजों को प्रथम से चतुर्थांश तीन-तीन गौ देने से १२ हुई। इस तरह एक सौ गौ का वितरण करना चाहिए। इसी प्रकार वस्त्र, हिरण्य और अन्नादिक का विभाग अपेक्षित है। अश्वमेघ याग में विजय द्वारा प्राप्त द्रव्य का दक्षिणा के निमित्त दिशापरक विभाग होता है। पूर्व से प्राप्त द्रव्य होता और उसके सहायकों को, दक्षिण से प्राप्त ब्रह्मगण को पश्चिम से प्राप्त अध्वर्युगण को और उत्तर से लब्ध द्रव्य उद्गातृगण को दिया जाता है।

ऋत्विजों के कार्य

प्रत्येक वेद और श्रौतसूत्र के अनुसार ऋत्विजों के कार्य विभिन्न प्रकार से निश्चित किये गये हैं। जिनका विस्तृत विवरण इस प्रकार है-

ऋग्वेदीय ऋत्विज्

होता - यह याग का प्रमुख ऋत्विज् है। यह अपने गण का प्रथम है। इसके सहायक अन्य तीन ऋत्विज् रहते हैं। अध्वर्यु को जिस देवता का याग करना अपेक्षित होता है वह होता को प्रैष देता है। तदनुसार होता पुरोऽनुवाक्या और याज्या पढता है। याज्या के अन्त में जब "वौषट्" का पाठ हो तभी अध्वर्यु को अग्नि में हविर्द्रव्य छोड़ना चाहिए। यही देवता का आवाहन करता है और देवता की स्तुतिपरक सूक्तवाक्

का पाठ करता है। सोमसंस्था से पूर्व के यागों में होता का कार्य अधिक नहीं रहता। सोमयाग अथवा उसके बाद होनेवाले यागों में तो शस्त्र का पाठ करने में इसको अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है। कई शास्त्रों में तो एक हजार से भी अधिक मन्त्र है। विहित स्वरों में अविच्छिन्न रूप से शस्त्रों का पाठ करना इसका कर्त्तव्य है। यह अपना कार्य ऋग्वेद के अनुसार करता है।

मैत्रावरुण (प्रशास्ता) - यह तीनों सहायकों में होता का प्रमुख सहायक है। सोमयाग के देवयजन में हविर्द्धान मण्डप से पश्चिम में सदोमण्डप रहता है। सदोमण्डप में दक्षिणार्द्ध में एक औदुम्बरी शाखा गाड़ी जाती है। यह शाखा यजमान के मुख तक ऊँची रहती है। मैत्रावरुण के हाथ में मुख तक ऊँचा औदुम्बर काष्ठ का एक दण्ड रहता है। दण्ड को हाथ में लिए हुए वह औदुम्बरी शाखा के निकट खड़ा रहता है। अध्वर्यु इसे मन्त्रपाठ करने का प्रैष करता है। तदनुसार वह स्वयं अपने मन्त्रों का पाठ करते हुए होता को मन्त्र पढ़ने की प्रेरणा करता है।

अच्छावाक् - यह होता का द्वितीय सहायक ऋत्विज् है। इसे पढ़ने के लिए शस्त्र के मन्त्र निश्चित हैं। उन्हीं मन्त्रों का पाठ करना इसका कर्तव्य है।

ग्रावस्तुत् - यह होतृगण का तृतीय सहायक ऋत्विज् है। सोम कूटने के समय पत्थर की स्तुति करना इसका प्रमुख कार्य है।

यजुर्वेदीय ऋत्विज्

अध्वर्यु - श्रौतयाग का यह प्रमुख ऋत्विज् है। कार्यकलाप की दृष्टि से इसका कार्य सभी ऋत्विजों से कठिन है। यज्ञीय क्रियाकलाप को सफल बनाने में इसका योगदान प्रमुख है। अध्वर्यु द्वारा ही श्रौतयाग की सभी व्यवस्थाओं का सम्पादन किया जाता है। अध्वर्यु कर्म को निर्दिष्ट करने वाले श्रौतसूत्र आपस्तम्ब, बौधायन और कात्यायन हैं। श्रौतयाग में सभी विधानों का केन्द्रीभूत अध्वर्यु होता है।

प्रतिप्रस्थाता - अध्वर्यु के सहायकों में यह प्रमुख है। यह सर्वदा अध्वर्यु के साथ रहता है। सोलह से कम ऋत्विज् वाले यागों में भी जहाँ दो वेदियों में एक साथ याग होता है, जैसे चातुर्मास्य याग और सौत्रामणी याग प्रभृति। उनमें एक वेदि में अध्वर्यु और दूसरी में प्रतिप्रस्थाता कार्य करता है। इस प्रकार ये दोनों ऋत्विज एक साथ याग करते हैं।

नेष्टा - यह अध्वर्यु के सहायकों में दूसरा है। सोमलता कूटने में यह अध्वर्यु की सहायता करता है। पत्नीशाला से यजमान-पत्नी को देवयजन में उपस्थित करना भी इसका कार्य है।

उन्नेता - यह अध्वर्यु का तीसरा सहायक ऋत्विज् है। यह कूटी हुई सोमलता को पात्र में छोड़ता है और पुनः कूटने के स्थान पर ले आता है। चमस-पात्रों को सोमरस से भरकर याग के निमित्त प्रस्तुत करना इसका प्रमुख कार्य है। अतिग्राह्य और हारियोजन संज्ञक याग की आहुतियाँ यही देता है।

सामवेदीय ऋत्विज्

उद्गाता - यह अपने गण का प्रमुख और प्रथम श्रेणी का ऋत्विज् है। यह सामवेद के श्रौतसूत्र का अनुसरण करता है। सामवेद के मन्त्रों का गान करते हुए वह देवता की स्तुति करता है। यह जिन मन्त्रों का गान करता है उन्हें 'स्तोत्र' कहते हैं। अग्न्याधान में भी इसके द्वारा मन्त्रों का गान होता है। सोमयाग के सामान्य स्थलों में गान करने के समय प्रस्तोता नामक ऋत्विज् इसका सहायक होता है। अन्य ऋत्विजों की अपेक्षा इसका अधिक सम्मान है। उद्गाता साम का गायन करता है और सर्वप्रथम सोमरस का याग करता है। इन सब दृष्टियों से इस ऋत्विज् का महत्त्व अधिक है।

प्रस्तोता - यह उद्गाता के सहायक ऋत्विजों में प्रमुख है। सोमयाग प्रभृति यागों की दीक्षणीया आदि इष्टियों में यही सामगान करता है। प्रवर्ग्य-विधान के समय सामगान करना इसका काम है। सोमयाग में देवता की स्तुति की जाती है। सामगान के मन्त्रों से जो स्तुति की जाती है उस गान के मन्त्र के पाँच अंश या भक्तियाँ हैं। इनके नाम उद्गीथ, प्रस्ताव, प्रतिहार, उपद्रव और निधन है। इनमें से प्रस्ताव भक्ति का गान प्रस्तोता करता है। सामगान के मन्त्रों में मन्त्र की कई आवृत्ति की जाती है। इन आवृत्तियों को याद रखने के लिए औदुम्बरी के आगे वह एक वस्त्र बिछाता है, उस पर विष्टुतियों को यथाक्रम जमा कर रखते हैं। मन्त्र की आवृत्तियों का विस्मरण न हो, एतदर्थ ऐसा करना अनिवार्य हो जाता है।

प्रतिहर्त्ता - यह उद्गाता का सहायक है। मुख्य देवता के उद्देश्य से जिन मन्त्रों का गान होता है उन मन्त्रों की एक भक्ति प्रतिहार है। उस अंश का गान यही ऋत्विज् करता है। प्रतिहार संज्ञक भक्ति का गान करने के कारण इसे प्रतिहर्त्ता कहते हैं।

सुब्रह्मण्य - यह उद्गाता का सहायक ऋत्विज् है। सोमलता को खरीदने के बाद उसे छायादार रथ पर रखते हैं। रथ को हाँककर यह ऋत्विज् प्राग्वंशमण्डप की ओर ले जाता है। सोमयाग में इन्द्र की स्तुति करना और इन्द्र को बुलाना इसी ऋत्विज् का कार्य है। जिस समय यह सुब्रह्मण्य साम का गान करता है उस समय यजमान का तथा यजमान के पितृ, पितामह, प्रपितामह और पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र प्रभृति का नामोल्लेख-पुरस्सर परिचय देता है कि अमुक व्यक्ति अमुक याग कर रहा है।

अथर्ववेदीय ऋत्विज्

ब्रह्मा - ब्रह्मा का कार्य उत्तरदायित्वपूर्ण है। याग की सविधि समाप्ति का उत्तरदायित्व इसी पर है। अध्वर्यु जैसे प्रमुख ऋत्विज् को भी इसकी अनुमति से कार्य करना पड़ता है। किसी भी ऋत्विज् से अज्ञात की गयी त्रुटि को सँभालने का काम इसी का है। जिस समय याग में त्रुटि हो ब्रह्मा उसी समय आगे होने वाले कार्यों को वहीं रोक देता है। पहले प्रायश्चित्त के द्वारा उस त्रुटि का निराकरण कर लेने के बाद आगे के कार्य किये जाते हैं। उसे दत्तचित्त होकर याग में होनेवाले प्रत्येक कार्य की देख-रेख करनी पड़ती है।

उसका आसन आहवनीय से दक्षिण में होता है और वह याग की त्रुटि का प्रायश्चित् याग को सम्पन्न करता है। उसके गण के तीनों सहायक ऋत्विज भी याग के विभिन्न कार्यों का सम्पादन करते हैं।

ब्राह्मणाच्छंसी - यह ब्रह्मा का प्रथम सहायक ऋत्विज् है। आवश्यकतानुसार याज्या और पुरोनुवाक्या पढ़ने में यह सहायता करता है। कदाचित् आवश्यकता पड़ने पर प्रतिनिधि के रूप में ब्रह्मा का कार्य भी यह करता है।

आग्नीध्र - यह ब्रह्मा का सहायक है परन्तु कार्यरूप में इसे अध्वर्यु की सहायता करनी पड़ती है। याग के निमित्त अग्नि को प्रदीप्त करना, इध्म और बर्हि को लाकर यथास्थान रखना, पुरोडाश-निर्माण के निमित्त गर्म पानी देना और पात्रों का सम्मार्जन प्रभृति कार्य इसे कर्तव्य हैं। यह याग के समय हाथ में वज्र लेकर आहवनीय से ईशान कोण में खड़ा रहता है। अग्निष्टोम याग में तो अध्वर्यु के आदेशानुसार इसे पुरोडाश-निर्माण के अतिरिक्त अन्य कार्य भी करने पड़ते हैं। वस्तुतः यह याग का प्रबन्धक और शस्त्रधारी ऋत्विज् है।

पोता - यह ब्रह्मा का सहायक ऋत्विज् होने पर भी इसकी सहायता का अधिकांश भाग होता को प्राप्त होता है। मैत्रावरुण के प्रैष के अनुसार यह याज्या का पाठ करता है।

उपर्त्विज् (सहायक ऋत्विज्)

पहले कहा जा चुका है कि बड़े-बड़े यागों में ऋत्विजों की संख्या सोलह रहती है, इसके अतिरिक्त कुछ सहायक ऋत्विज् और अन्य भी हैं जिनके नाम तथा कार्य इस प्रकार हैं-

सदस्य - याग में इसका स्थान महत्त्वपूर्ण है। वेदि के निकट बैठकर यज्ञीय कार्य का निरीक्षण करना इसका कर्त्तव्य है। यज्ञ के प्रत्येक कार्य को व्यवस्थित रूप से करना एक जटिल विषय है। उसे संभालना ब्रह्मा का काम है। यदि कहीं पर ब्रह्मा की दृष्टि से भी किसी ऋत्विज का प्रमाद चूक जाय तो उसे संभालने का कार्य इसी ऋत्विज् का है। इस व्यक्ति का विशिष्ट विद्वान् होना आवश्यक है।

चमसाध्वर्यु - सोमयाग में चमसाध्वर्यु इस एक ही नामवाले दस ऋत्विजों की आवश्यकता होती है। इन्हें उपर्त्विज् कहते हैं। अध्वर्यु जब सोमरस का याग करके पात्र को खाली कर देता है तो उसी समय सोमरस से उस पात्र को भर देना, सोमरस के पान के समय प्रत्येक ऋत्विज् के पास उनके चमसपात्रों को पहुँचाना, सोमपान के अनन्तर चमसपात्रों को मार्जालीया शाला में धोकर उन्हें यथास्थान रखना आदि कार्य इन्हीं दसों ऋत्विजों का काम है। अध्वर्यु द्वारा किये गये सोमरस के याग के अनन्तर ये दसों चमसाध्वर्यु नामक ऋत्विज् सोमरस का याग करते हैं। इनकी गणना सहायकों में की गयी है। ये चमसपात्र से सम्बद्ध कार्य करते हैं।

ध्रुवगोप - सोमयाग में हविर्धान के पूर्व में ध्रुवसंज्ञक एक ग्रहपात्र रखा जाता है। यह सोमरस से पूर्ण होता है। इसकी रक्षा करना इस उपर्त्विज् का कार्य है।

हविष्कृत् - चावल, यव आदि हविर्द्रव्य को साफ करके उसे पीसकर हवि के निमित्त आटा तैयार कर देना प्रभृति इस ऋत्विज् का प्रमुख काम है।

पशुपाल - यज्ञ में हवि के रूप में, दक्षिणा के रूप में अथवा दूध, दही, वाजिन और आमिक्षा के निमित्त एवं स्वर्ण, स्वर्णाभूषण, अश्व, अज, गौ और हाथी प्रभृति अनेक पदार्थों की और पशुओं की आवश्यकता होती है। उनको संभालना, यथासमय दाना-पानी देते हुए उनकी देख-रेख करना और यथासमय आवश्यक वस्तु या पशु को उपस्थित करना इस व्यक्ति का कार्य है। यह वैश्य जाति का होना चाहिए।

दोग्धा - याग के लिए यथासमय दूध दुहना और याग के निमित्त उसे उपस्थित करना इसका काम है।

शमिता - यज्ञ के निमित्त पशु का संज्ञपन करना पड़ता है। तदर्थ शमिता अपेक्षित है।

इकाई-5

श्रौतयज्ञ की भूमि और वेदी मण्डप

श्रौतयज्ञ के लिए भूमिचयन

यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है – **यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**, अतः यज्ञ करने हेतु जिस स्थान पर यज्ञशाला बनाई जाती है, वह विशिष्ट होना चाहिए। श्रौतयाग हेतु यागोचित स्थान में श्रौत का देवयजन बनाने का निर्देश प्राप्त होता है।

कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।

स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः॥ मनु० २. २३॥

अर्थात् जिस देश में कृष्णसार – कृष्ण मृग, निर्भीक और स्वाभाविक रूप विचरण करता हो, वह स्थान यज्ञीय स्थान माना जाता है। जहाँ पर प्राणिमात्र में लेशमात्र भी भय न हो, हिंसाचरण न होता हो, वह भूमि श्रौतयाग के लिए सर्वोपयुक्त है।

विष्णुसंहिता के द्वादश पटल में यागभूमि के अनेक लक्षण बताए गए हैं। वहाँ चार प्रकार की भूमियाँ कही गयी हैं- सुपद्मा, भद्रिका, पूर्णा और धूम्रा। इनमें से भद्रिका नामक भूमि को यज्ञ के लिए सर्वथोपयुक्त माना है।

नदीसागरपर्यन्ततीर्थायतनमाश्रिता।

क्षीरवृक्षसमाकीर्णा फलवृक्षसमाकुला॥

उद्यानोपवनोपेता फुल्लगुल्मलताकुला।

पश्चिमे याज्ञिकैवृक्षैर्व्रीहिक्षेत्रेण दक्षिणे॥

भद्रिका भूमिराख्याता सुखदा तत्र यज्वनाम्॥ विष्णुसंहिता – १२/२९-३०

भूशुद्धि -

यजमान बायें हाथ में वज्र तथा दक्षिण हाथ में जलपात्र और दर्भ लेकर आहवनीय के निकट जाय। भूमि शुद्धि के लिए पहले आहवनीय में और तत्पश्चात् दक्षिणाग्नि में पञ्चभूसंस्कार करे। दोनों में पञ्चभूसंस्कार हो जाने पर गार्हपत्य में से अग्नि लेकर दोनों खर पर क्रमशः रखे।

दर्भैः खरं प्राक्संस्थमुदकसंस्थं वा त्रिःपरिसमुह्य, गोमयेन त्रिरुपलिप्य, स्फ्येन उदक्संस्था प्राक्संस्था वा तिस्रो लेखाः खरप्रमाणाः कृत्वा अनामिकाङ्गुष्ठेन ताभ्यो लेखाभ्यः पांसूनुद्धृत्याद्भिस्त्रिरभ्युक्षेत्।

प्रस्तुत कार्य के निमित्त आहवनीय और दक्षिणाग्नि में गार्हपत्य में से अग्निस्थापन करना ही उद्धरण है। कात्यायन श्रौतसूत्र के अग्निहोत्र प्रकरण में उल्लेख प्राप्त होता है- **उद्धरेति यजमानः** – का०श्रौ० ४.१३.१

श्रौतयाग की वेदि तथा खर(कुण्ड)

अग्निस्थान निरूपण

जहाँ वेदिनिर्माण करना है वहाँ दिशा निर्धारण के पश्चात् पश्चिम दिशा में साढ़े तेरह (१३-१/२) अङ्गुल की एक रस्सी से वृत्तनिर्माण करे। यह गार्हपत्य का स्थान है। गार्हपत्य के केन्द्र बिन्दु से ग्यारह/बारह प्रक्रम नाप कर शङ्कु गाड़े या चिह्न करे।

अष्ट प्रक्रम से वेदी बनाना हो तो, गार्हपत्य के केन्द्र से बिन्दु न नाप कर उसकी सीधाई में पूर्वपरिधि पर बिन्दु देकर, आहवनीय के पश्चिम परिधि तक अष्टप्रक्रम मापना होगा, अन्यथा दक्षिणाग्नि विहरण के समय दक्षिणाग्नि वेदि के अन्दर रह जाएगी।

द्वादश प्रक्रम पक्ष को लेकर अग्नि स्थान निरूपण

गार्हपत्य के अभीष्ट शङ्कु से द्वादशप्रक्रम पूर्व को नाप कर आहवनीय का शङ्कु गाड़ दे। गार्हपत्य आहवनीय अन्तर्वर्ति रस्सी को छः भाग करने पर एक-एक भाग एक हाथ का होगा उस छः हाथ की रस्सी के साथ एक हाथ रस्सी और बढ़ा कर सात हाथ वाला रस्सी बनाए। उसको तीन भाग करे। तीन भाग को भी समान दो भाग करे। इस प्रकार ७ हाथ वाली रस्सी में ६ चिह्न सम्पन्न हुआ। रस्सी के दोनों छोर में पाश लगा कर आहवनीय और गार्हपत्य के अभीष्ट शङ्कु में फंसा कर (गार्हपत्य ओर की) तृतीय भाग के चिह्न को पकड़ कर दक्षिण की तरफ खींचे, जहाँ चिह्न स्पर्श करे वहाँ शङ्कु गाड़ दे। वह दक्षिणाग्नि का केन्द्र बिन्दु है। फिर आहवनीय के ओर जो त्रिभाग वाला प्रथम चिह्न है, उसको पकड़ कर उत्तर के ओर खींचे। जहाँ स्पर्श करे वहाँ एक शङ्कु गाड़ दे। वह उत्कर का स्थान है।

वेदिनिर्माण

गार्हपत्य का केन्द्रीय शङ्कु हमेशा गार्हपत्य का केन्द्र बिन्दु होगा, परन्तु आहवनीय शङ्कु आहवनीय के तीन प्रकार के स्वरूप का निरूपक है। जोकि- **वेद्यां सर्वः, बहिः सर्वः, बहिरन्तश्च भागतः** इस प्रकार है।

- यदि आहवनीय शङ्कु को आहवनीय का केन्द्र बिन्दु मान कर वेदिनिर्माण करते हैं तो आहवनीय का आधा भाग वेदि के अन्दर और आधा भाग वेदि के बाहर पड़ जाता है।
- अब यदि आहवनीय शङ्कु को आहवनीय के पूर्व सीमा सूचक मानते हुए वेदि विहरण किया जाता है तो वेदि के अन्दर पूरा आहवनीय नजर आ जाता है।
- अगर आहवनीय खर शङ्कु को उसका पश्चिम शङ्कु माना जाता है तो आहवनीय अग्निकुण्ड वेदि से बाहर हो जाएगा।

- आहवनीय शङ्कु को खर के आदि मध्य अन्त तीन स्थान मानने पर, सारा वेदि से बाहर आधा वेदि में आधा बाहर सारा वेदि के अन्दर होता है। अतः यहाँ सम्प्रदायानुसार सारा आहवनीय खर वेदि के अन्दर पक्ष को मान कर वेदि संरचना प्रस्तुत करते हैं।

गार्हपत्य के केन्द्रबिन्दु से १२ प्रक्रम दूरी पर गाड़ा गया शङ्कु आहवनीय का पूर्वी शङ्कु माना गया। उस शङ्कु को केन्द्र मान कर वेदि संरचना करनी है तदर्थ आहवनीय पूर्वी शङ्कु से पश्चिम के तरफ सीधे तीन अरत्नि नाप कर वहाँ एक शङ्कु गाड़े, वहाँ से दो अरत्नि उत्तर एवं दो अरत्नि दक्षिण नाप कर शङ्कु गाड़ें। आहवनीय पूर्वी शङ्कु से डेढ़ अरत्नि उत्तर एवं डेढ़ अरत्नि दक्षिण दूरी पर दो शङ्कु गाड़ें। इस प्रकार चार कोने पर चार शङ्कु गाड़ दिया गया, उनको रेखा से जोड़ देने पर एक विषमचतुरस्र बन जाता है। इससे वेदि की बाह्य सीमा निश्चित होती है।

संग्रह निर्माण

आहवनीय के पूर्वी मध्य शङ्कु से वेदिपृष्ठ्या रेखा(रस्सी) के पश्चिम शङ्कु पर्यन्त (कोणद्वय वेष्टनपूर्वक) दक्षिणावर्त से रस्सी को फैलावे। उसको आधा करके दक्षिण एवं उत्तर में फैलावे। जहाँ स्पर्श करे, वहाँ चिह्न करे, दोनों संग्रहों के दो केन्द्रबिन्दु निष्पन्न हुए, अर्धभाग के चतुर्थांश से केन्द्रबिन्दु से अर्ध व्यास भ्रामण करने पर दो संग्रह निष्पन्न होते हैं।

खर(कुण्ड)निर्माण

गार्हपत्य खर निर्माण (वृत्ताकार गार्हपत्य)

गार्हपत्य केन्द्र बिन्दु से साढ़े तेरह अंगुल रस्सी से एक वृत्त निर्माण करने से सत्ताईस अंगुल का एक वृत्त निष्पन्न होता है। अन्दर २७ अंगुल का हिस्सा छोड़ कर वृत्त परिधि से सटा कर चार अंगुल मोटा, २४ अंगुल ऊँचा परिधि चारों ओर से निर्माण करे। इससे गार्हपत्य कुण्ड निर्मित हुआ। सभी अग्निओं में खर प्रमाण के बाहर चार अंगुल मोटा २४ अंगुल ऊँचाई की परिधि लगानी है।

आहवनीय-चतुरस्राकार (वर्गक्षेत्र)

पूर्वी शङ्कु से १२ अंगुल उत्तर, १२ अंगुल दक्षिण नापकर, फिर उत्तर और दक्षिण शङ्कु से पश्चिम के ओर एक-एक हाथ (२४ अंगुल) नाप कर चिह्न करे, उत्पन्न चार शङ्कुओं को रेखा पात से जोड़े। इस चारों के ओर से २४ अंगुल प्रमाण वाला आहवनीय खर सम्पन्न हुआ।

दक्षिणाग्नि-अर्धचन्द्राकार

दक्षिणाग्नि के केन्द्रबिन्दु से उत्तर साढ़े नौ अंगुल दूरी पर (सीधाई में) एक शङ्कु दें। उस बिन्दु से पूर्व-पश्चिम साढ़े नौ अंगुल (९-१/२) अंगुल की रेखा बनायें तथा केन्द्रबिन्दु से उस प्रमाण से ही एक वृत्त

बनाए। इससे १८ अंगुल का वृत्त बना एवं मध्य रेखा से विभाजित भी हुआ। वृत्त का उत्तर भाग त्याग करने से दक्षिणाग्नि खर निष्पन्न हुआ। परिधि निर्माण पूर्ववत् करें।

उत्कर- इसका स्थान निरूपण पूर्व में कर दिया गया है। केन्द्रबिन्दु से तीन अंगुल रस्सी लेकर एक वृत्त बनाना होगा। यह वृत्त छः अंगुल का निष्पन्न हुआ। इस वृत्त को एक अंगुल गहरा बनाया जाता है। इस प्रकार उत्कर का स्वरूप निष्पन्न हुआ।

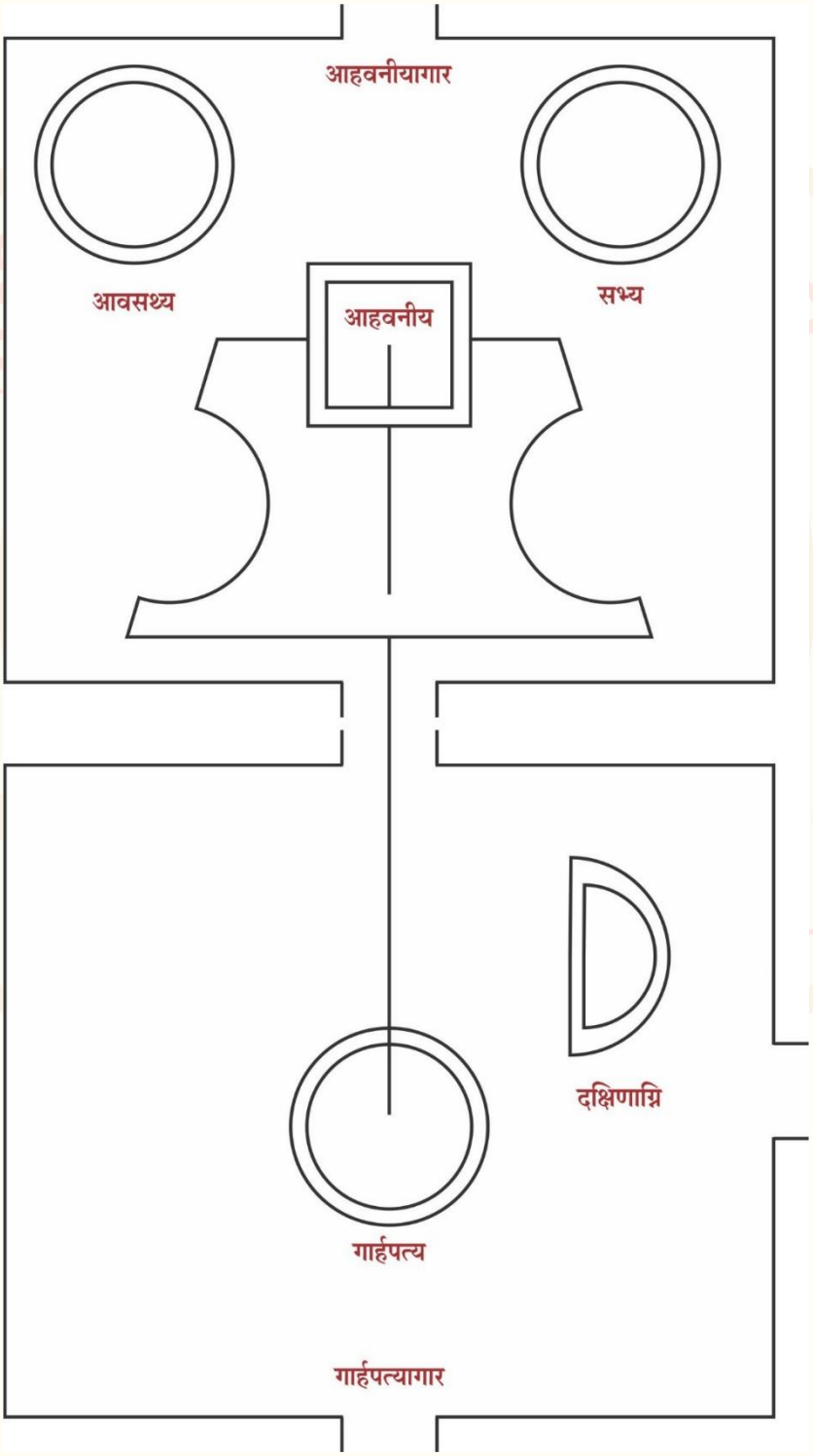

इकाई -6

श्रौतयज्ञ के पात्र व आवश्यक द्रव्य

यज्ञपात्रों का परिचय

1. **उत्तरारणि**- यह यज्ञपात्र शमीगर्भ अश्वत्थवृक्ष के काष्ठ से अग्नि उत्पन्न करने के लिए निर्मित की जाती है और इसके काष्ठ द्वारा ही एक आठ अंगुल लम्बाई वाला टुकड़ा काटकर इसमें मन्थ लगाया जाता है।

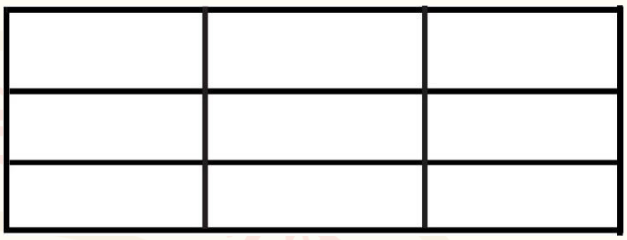

"उत्तरारणेरीशानदिक्संस्थ- मष्टांगुलं प्रमन्थं छित्वा, दे.या.प.-पृष्ठ 104

आश्वत्थीन्तु शमीगर्भीमरणीं कुर्वीत सोत्तराम्।

उरोदीर्घारत्निदीर्घा चतुर्विंशाङ्गुलां तथा॥

चतुरङ्गुलोच्छ्रितां कुर्यात् पृथुत्वेन षडङ्गुलाम्।

अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चात्रं स्याद्वादशाङ्गुलम्॥

ओबिली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम्।

मूलादष्टाङ्गुलमुत्सृज्य त्रीणि त्रीणि च पार्श्वयोः॥

मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा अग्रात्तु द्वादशाङ्गुलम्।

देवयोनिः स विज्ञेयस्तत्र मध्यो हुताशनः॥ इति गृह्यसंग्रह- १/७८-८१

2. **अधरारणि**- अधरारणि पर मन्थ रखकर अग्नि मन्थन किया जाता है। चौबीस अंगुल लम्बी, छः अंगुल चौड़ाई वाली एवं चार अंगुल ऊँची निर्मित करते हैं। **"अधरारणिमुत्तराग्रां निधाय।** दे.या.प. पृष्ठ 104

3. **मन्थ**- यह कील जैसा आठ अङ्गुल लम्बाई का उत्तरारणि में से टुकड़ा निकालकर बनाया जाता है। इसके नुकीले भाग को अधरारणि पर रखकर ऊपर

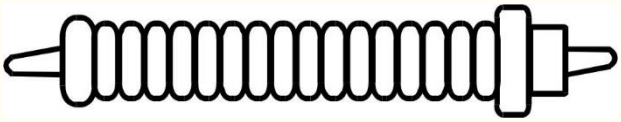

से उसको ओबिली से दबाकर मध्य में पहले से लगाई हुई रज्जु को दोनों हाथों से खींचकर अग्निमन्थन करते हैं। **"एकशलाकया मन्थः**। का.श्रौ.सू.- 5/8/18

4. नेत्र- मन्थ में लपेटकर जिस रज्जु से अग्निमन्थन किया जाता है, उसे नेत्र कहते हैं। इसकी लम्बाई चार हस्त होती है। **"नेत्रं स्याद् व्याममात्रकम्। यज्ञपार्श्व परि.** श्लोक 4.1

5. ओबिली- अग्निमन्थन करते समय मन्थ को जिस काष्ठ से दबाते हैं, उसे ओविली कहते हैं। यह बारह अङ्गुल लम्बी होती है। "ओविली द्वादशाङ्गुल्या। यज्ञपार्श्व श्लोक 41

6. अग्निहोत्रहवणी- जिसके द्वारा अग्निहोत्र किया जाता है, उसे अग्निहोत्रहवणी कहते हैं।**"अग्नौ हूयते यया साऽग्निहोत्रहवणी"** विकङ्कत काष्ठ की बाहु के समान लम्बी, आगे की ओर चार अंगुल गर्तवाली, हंसमुखी होती है। **"अग्निहोत्रहवणी हंसमुखी। दे.या.प.-पृष्ठ 6**

7. स्फ्य- यह यज्ञपात्र खदिर काष्ठ से निर्मित किया जाता है। यह एक हस्त लम्बा और दोनों ओर नुकीला होता है। यज्ञ करने के समय आग्नीध्र नामक ऋत्विज् इसे अपने हाथ में पकड़े रहता है। यथा- **"स्फ्यश्च। का.श्रौ.सू.-1/3/33**

8. धृष्टि(उपवेष)- यह कपालोपधान से पूर्व अग्नि को हटाने के लिए प्रयुक्त होता है। यह हस्त के पंजे के आकार का, एक हाथ लम्बाई का होता है। **"धृष्टिरसीत्युपवेषमादाय। का.श्रौ.सू.-2/4/25**

9. उलूखल- पलाश काष्ठ से निर्मित हविर्द्रव्य को कूटने के लिए बनाया जाता है, इसकी ऊँचाई बारह अङ्गुल और मध्य में पतला होता है। **"पालाशः स्यादुलूखलः। दे.या.प. पृष्ठ 6**

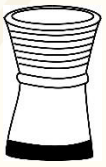

10. मुसल- यह यज्ञपात्र खदिर काष्ठ से निर्मित किया जाता है। यह बारह अंगुल लम्बा और गोल आकार का होता है, इसका उपयोग यव, व्रीहि आदि हविर्द्रव्य का खण्डन हेतु करते हैं। **"खादिरं मुसलं कार्यम्।, मुसलोलूखलेवार्थी स्वायते सुदृढे तथा।" दे.या.प. पृष्ठ सं.6**

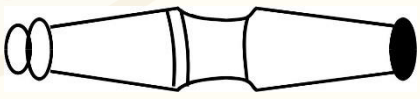

11. उपयमनी- जुहू के आकार की और जुहू से बड़ी एक स्रुची को उपयमनी कहते हैं। **"उपयमनीं महावीरम्" दे.या.प. –पृष्ठ.सं. 265**

12. **जुहू- हूयतेऽनयेति जुहूः** अर्थात् पलाश काष्ठ से निर्मित होम करने की स्रुची को जुहू कहते हैं। यह भुजा के बराबर लम्बी और आगे की ओर चार अंगुल गड्ढेवाली, हंसमुखी होती है। इसी से देवता को हविर्द्रव्य अर्पित किया जाता है। जुहू के विषय में "**पालाशी जुहूः। का.श्रौ.सू.-1/3/35, पर्णमयी जुहूर्भवति।** तै.सं.-3/7/5

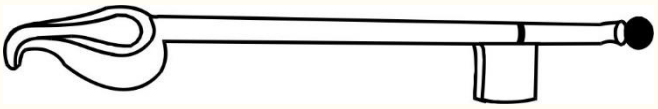

13. **उपभृत्**- उप समीपे नीयत इति उपभृत्। यह स्रुची अश्वत्थ काष्ठ की बनती है। इसका आकार और माप जुहूवत् होता है। याग के समय अध्वर्यु इसे अपने साथ रखता है। जुहू का आज्य समाप्त होने पर शेष आहुति के लिए इसमें से जुहू में आज्य लेकर आहुति दी जाती है। "आश्वत्थ्युपभृत्" का.श्रौ.सू. - 1/3/36

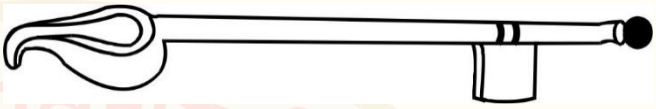

14. **ध्रुवा- वेद्यामप्रचलिता तिष्ठतीति ध्रुवा।** यह मान और आकार में जुहू सदृश स्रुची है। यह वेदि में रखी रहती है। याग के निमित्त इसमें से ही स्रुवा से आज्य लेकर जुहू में छोड़ते हैं और याग करते हैं। **अभिघारणं ध्रुवायाः।** का.श्रौ.सू.-3/3/9

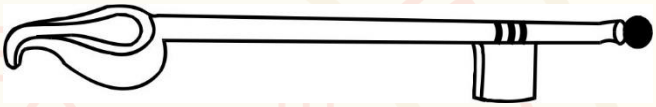

15. **रौहिणहवणी**- रोहिण पुरोडाश का हवन जिस स्रुची से किया जाता है, उसे रौहिणहवणी कहते हैं। यह गर्तरहित, बाहुमात्र लम्बी, जुहूवत् आकार की स्रुची होती है। **रौहिणहवन्यादाय** । दे.या.प. पृष्ठ 268

16. **मयूख**- अजा को बाँधने के लिए प्रयुक्त लकड़ी की खूँटी को मयूख कहते हैं। **स्थूणा मयूखम्।** का. श्रौ.सू.- 26/2/15

18. **शम्या**- यह यज्ञपात्र वारण काष्ठ निर्मित, बारह अंगुल लम्बी तथा आगे से नुकीली होती है। यव एवं व्रीहि को पीसने के समय इसे शिला के नीचे रखते हैं। दृषद् एवं उपल के ऊपर इसके समाहनन द्वारा कुक्कुटवाणी उत्पन्न की जाती है, जिससे असुर नष्ट होते हैं। "**शम्या प्रादेशमात्री।**" दे.या.प.-पृष्ठ 7

19. **इडापात्री**- यह यज्ञपात्र वारण काष्ठ निर्मित, एक अरत्नि लम्बी, छः अंगुल चौड़ी, बीच में गहरी और कृशमध्या होती है। अध्वर्यु पुरोडाश और चरु प्रभृति की आहुति के अनन्तर शेष हविर्द्रव्य (पुरोडाश) को इसमें रखकर होता को देता है, जिसे

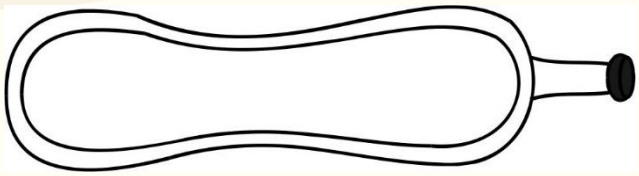

इडोपह्वान के बाद ऋत्विज् सहित यजमान भक्षण करते हैं। **"इडापात्री० अरत्निमात्र्यौ मध्यसंगृहीते"**। दे.या.प. पृष्ठ 7

20. **स्रुव- स्रवति आज्यं यस्मात्।** जिस पात्र से अग्नि पर आज्य की आहुति दी जाती है, उसे स्रुव कहते हैं। यह खैर की लकड़ी का अरत्निमात्र लम्बा बनता है। इसमें आज्य लेने के लिए आगे की ओर अंगुष्ठपर्वमात्र का गर्त होता है। **"खादिरः स्रुवः"** का.श्रौ.सू.-1/3/3/4

21. **इध्म**- पलाश की लकड़ी को काटकर इध्म बनायी जाती है। ये एक हाथ लम्बी होती है। प्रकृतियाग में इनकी संख्या पन्द्रह एवं विकृतियाग में सत्रह या फिर इक्कीस होती है।

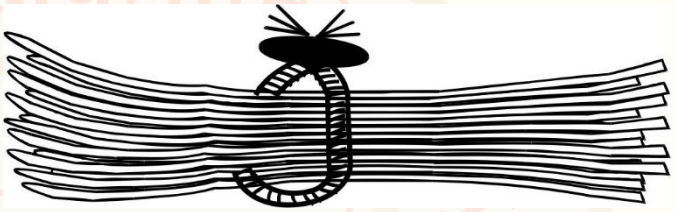

"पालाशोऽष्टादशसंख्यारत्निमात्रकाष्ठकः - दे.या.प. पृष्ठ 4

22. **बर्हि**- अग्निशाला की वेदि में बिछानेवाले दर्भसमूह को बर्हि कहते हैं।

तृणसंज्ञास्तु ये दर्भा एकपत्राः स्मृतास्तु ते।

ते बर्हिः संज्ञकादर्भारत्निमात्राधिकाश्च ये॥ यज्ञपार्श्व परिशिष्ट श्लोक 9

23. **पुरोडाशपात्री**- यह एक वारणकाष्ठ का प्रादेशमात्र चतुरस्र पात्र होता है। इन्हीं पर पुरोडाश रखे जाते हैं। एक कपाल पर श्रृत पुरोडाश को रखने के लिए यही पात्री सबिला होती है।

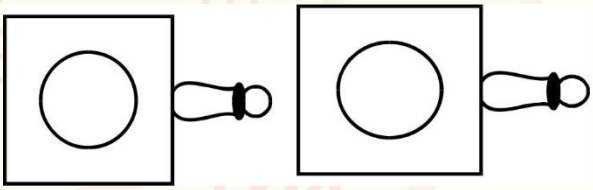

पुरोडाशाख्यपात्री च प्रादेशाश्चतुरस्रिकाः।

मध्ये तु दर्पणाकारा मूले दण्डसमन्विताः ।।

यज्ञपार्श्व परिशिष्ट- श्लोक 119-120

24. **प्राशित्रहरण**- यह यज्ञपात्र वारणकाष्ठ से बनता है। इस पर प्राशित्रसंज्ञक हवि को रखकर ब्रह्मा को दिया जाता है, इसकी लम्बाई पाँच अंगुल और चौड़ाई चार अंगुल की होती है। पीछे की ओर दो अंगुल का

दण्डा होता है। ये दो होते हैं। एक पर पुरोडाश रखा जाता है और दूसरे को ऊपर से ढका जाता है।

प्राशित्रहरणं कुर्यात् पञ्चाङ्गुलप्रमाणकम्। आदर्शाकारवन्मध्ये..॥ यज्ञपार्श्व परि श्लोक 122

25. **षडवत्त**- इडोपह्वान हो चुकने पर अध्वर्यु द्वारा आग्नीध्र को षडवत्त भाग दिया जाता है। वह भाग जिस पात्र पर रखा जाता है, उसे भी षडवत्त कहते हैं।

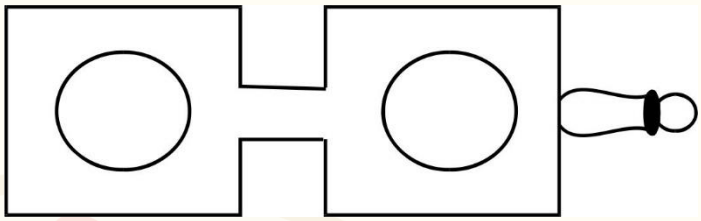

उपर्युक्त पात्र पर दो बार आज्य, दो बार पुरोडाश का भाग और पुनः दो बार आज्य रखने के कारण इस पात्र को षडवत्त कहते हैं।

"**अग्नीधे षडवत्तम् ०** । का.श्रौ.सू.- 3/4/16

26. **द्रोणकलश**- यह विकङ्कत काष्ठ का यज्ञपात्र है। इसकी लम्बाई अठारह अंगुल या एक हाथ की कही गई है और चौड़ाई बारह अंगुल रहती है। मध्य में गर्तवाला तथा चारों ओर परिधियुक्त होता है, इसमें सोमरस छाना जाता है। "**द्रोणकलश० कुर्यादरत्निमात्राणि।**" यज्ञपार्श्व परि. श्लोक 118

27. **होतृपीठ**- जिस यज्ञकाष्ठ निर्मित पीठ पर बैठकर होता सामिधेनी ऋचा पढ़ता है, वह होतृपीठ होता है। यह एक अरत्नि लम्बा और प्रादेशमात्र चौड़ा होता है।

आसनानि चारत्निमात्रदीर्घाणि प्रादेशमात्रविपुलानि.। दे.या.प. पू. 7

28. **शूर्पम्**- यह पात्र बाँस से बना होता है। यज्ञ के लिए धान या यव को कूटकर इसी शूर्प से फटककर साफ किया जाता है। **शूर्प वैणवमेव च०** । दे.या.प. पृष्ठ 6

29. **कृष्णाजिन**- कृष्णमृग के चर्म को कृष्णाजिन कहते हैं। धान कूटने के समय उलूखल के नीचे और अग्निमन्थन के समय अरणी के नीचे इसको बिछाया जाता हैं।"**कृष्णाजिनमादत्ते।** श.प.ब्रा.- 1/1/1/4

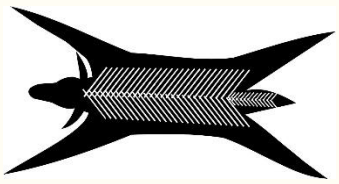

30. **दृषत्- दीर्यते असौ दृषत्।** पुरोडाश बनाने के लिए यव या व्रीहि का पेषण संस्कार इस पर होता है। यह एक शिला है। यह एक रत्नि लम्बी और चौड़ी चतुरस्र होती है। **दृषद्रत्निप्रमाणेन ।** यज्ञपार्श्व परि.श्लोक 24

31. **उपला**- पुरोडाश बनाने के लिए यव या व्रीहि को पीसने की लुढ़िया को उपल कहते हैं। "**तथोपला०।** यज्ञपार्श्व परि.श्लोक 124

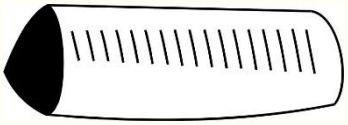

32. **श्रुतावदान**- यह प्रादेशमात्र का एक यज्ञपात्र है। पुरोडाश में से अवदान लेने के के लिए इसका उपयोग होता है। इसका आकार खुरपी जैसा कहा है।

"**प्रादेशमात्रं तीक्ष्णाङ्गुष्ठपर्वमात्रपृथुमुखम्**" दे.या.प. पृष्ठ 7

33. **आज्यस्थाली**- देवता के निमित्त हवन अथवा याग करने का आज्य जिस पात्र में रखते हैं, उसे आज्यस्थाली कहते हैं।

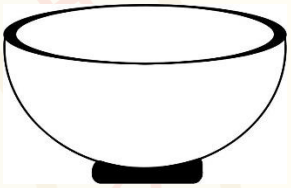

आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा।

माहेयी वापि कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च॥ कात्यायनस्मृति- 15/10

34.**अन्तर्धानकटः**- यह बारह अंगुल लम्बा, छः अंगुल चौड़ा और अर्धचन्द्राकार एक यज्ञपात्र है। जिस समय अध्वर्यु गार्हपत्य के अग्नि पर पत्नीसंयाज करता है, उस समय देवपत्नियों का आवाहन होता है।

अन्तर्धानकटस्त्वर्धचन्द्राकारो द्वादशांगुलः । दे.या.प. पृष्ठ सं 7

35. **शकट**- याग में प्रयुज्यमान यव, व्रीहि आदि हविपदार्थों को जंगल से काटकर जिस पर लादकरयज्ञभूमि तक लाया जाता है, वह शकट कहलाता है। इसका उपयोग इष्टि तथा सोमयाग में आवश्यक रूप से होता है।

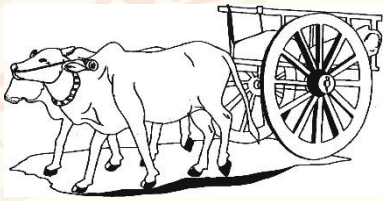

"**श्रपणस्य पश्चादनस्तिष्ठत्समंगम्**" का.श्रौ.सू.- 2/3/12

36. **रथ**- वाजपेयादि सोमयागों में रथारोहण का विधान है। एतदर्थ रथ की आवश्यकता होती है। "**रथावहरणम्**" का.श्रौ.सू.- 14/3/1, **अथ वाजपेये सप्तदशानां रथानां त्रयस्त्रयोऽश्वाः।**" बौ.श्रौ.सू.- 25/33

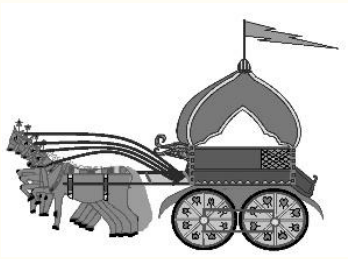

37. **वसतीवरी**- यज्ञ के कार्य के लिए उपयोग में आने वाले आवश्यक जल को वसतीवरी कहते हैं। यह जल विधिपूर्वक नदी से घड़ों में लाया जाता है। इसी जल से सोमाभिषवादि कार्य होते हैं। "**वसतीवरीर्निनयन्ति** । दे.या.प. पृष्ठ 308

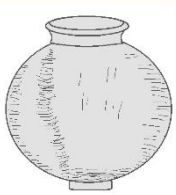

38. **धमनी**- वंश निर्मित जिस पात्र के द्वारा मुँह से हवा फेंकते हुए अग्नि प्रज्वलित करते हैं, उस पात्र विशेष को धमनी कहते हैं।

"न पक्षपेनोपधमेत्। यज्ञपार्श्व श्लोक-66.67

39.**महावीरपात्र**- अग्निष्टोम प्रभृति यागों में प्रवर्ग्य को यज्ञ का शिरस्थानीय कहा गया है। प्रवर्ग्य और घर्म महावीर का पर्याय है। महावीरसंज्ञक एक मिट्टी का पात्र बनाया जाता है। यह कई प्रकार की मिट्टी, गवेधुका और दूध आदि से सविधि बनता है। यह पात्र प्रादेशमात्र ऊँचा, चौड़े पेंदेवाला, चौड़े मुँहवाला और मध्य में कुश होता है। इसमें घी भरकर खूब खौलाते हैं। अनन्तर उसे मैदान में ले जाकर, उसमें दूध छोड़ते हैं। दूध छोड़ते ही अत्यन्त भयंकर ज्वाला निकलती है। बाद में उसे यज्ञशाला में लाकर उससे हवन करते हैं।

"**महावीरं परिसिञ्चति**- का.श्रौ.सू. 26/4/6, **कुर्यात्प्रादेशमात्राणि महावीराणि०** ।

यज्ञपार्श्व परि. श्लोक 18

40. **चरुस्थाली**- याग के निमित्त गार्हपत्य पर पाचित ओदन चरु है। यहाँ विशेष देवता के लिए विशेष द्रव्य विहित है। इस प्रकार देवता विशेष हेतु चरु बनाकर जिस पात्र में रखा जाता है, उसे चरुपात्र कहते हैं।

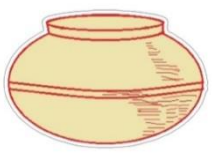

41. **एकधन**- यज्ञोपयोगी पानी से भरा हुआ मिट्टी का घड़ा एकधन है।

"**प्रत्यगेकधनान्**" का.श्रौ.सू. 9/2/22

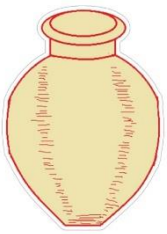

42. **परीशास**- महावीर पात्र को अग्नि पर से पकड़कर उठाने के लिए यह एक यज्ञकाष्ठ का सन्देश है।

"**परीशासावादत्ते**- का.श्रौ.सू.- 26/5/12

43. **घन**- यह काष्ठ के दण्ड वाला लोहे का बना होता है। भूमि में मयूख या स्थूणा गाड़ने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। "**स्थूणां गोबन्धनार्थं निखनति।**"

44. **परशु**- यज्ञकार्य के निमित्त दर्भ अथवा समित् को काटने का शस्त्र परशु है।

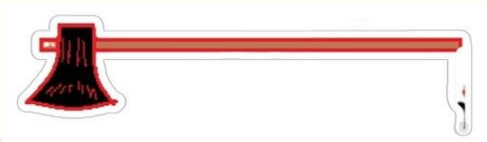

"**पलाशशाखां छिनत्ति**" दे.या.प.-पृष्ठ 76

45. **दर्वि**- **दृणाति विदारयति येन स दर्विः**। यह विकंकत काष्ठ की बनी कलछुल के आकार की होती है। चातुर्मास्य याग में इसी से हविर्द्रव्य की आहुति दी जाती है।

"**दर्य्यादत्ते**" का.श्रौ.सू.-5/6/30, का. स्मृति- 15/15

46.**चरुपात्र**- जिस पात्र में देवता विशेष हेतु निर्दिष्ट हविर्द्रव्य ओदनादि को गार्हपत्य पर रखकर पकाया जाता है, उसे चरुपात्र कहते हैं। इसका मुँह चौड़ा, पेंदी गोल एवं आकार पतीला जैसा होता है।

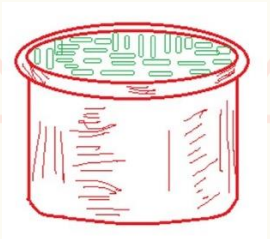

47. **चमसपात्र**- ये यज्ञपात्र विकङ्कत काष्ठ के बने होते हैं। इनका आकार और मान प्रणीता सदृश है। इनमें सोमरस रखकर आहुति दी जाती है। ये संख्या में दस होते हैं। प्रत्येक को एक दूसरे से अलग जानने के लिए इसके दण्ड में अलग-अलग चिह्न होते हैं।

विकंकतमयाः श्लक्ष्णास्त्वग्विलाश्चमसाः स्मृताः।

चतुरंगुलखाताश्च तेषां दण्डेषु लक्षणम्॥

होतुर्मण्डल एव स्याद्ब्रणश्चतुरस्रकः।

उद्गातृणां च त्र्यस्रिः स्याद्याजमानः पृथुः स्मृतः॥

प्रशास्तुरवतष्टः स्यादुत्तष्टो ब्रह्मशंसिनः।

पोतुरग्रे विशाखी स्यान्नेष्टुः स्याद्विगृहीतकः॥

आच्छावाकस्य रास्ना च आग्नीध्रस्य मयूषकः॥

48. **मण्डलहोतृचमस**- होता नामक ऋत्विज् के लिए जो चमस होता है, उसे होतृचमस कहते हैं। पहचान के लिए इसके दण्ड पर मण्डलाकार चिह्न होता है।

"होतुर्मण्डल एव चमस स्यात्।"

49. **चतुरस्र-ब्रह्मचमस**- ब्रह्मा नामक ऋत्विज् के लिए जो चमस होता है, उसे ब्रह्मचमस कहते हैं। पहचान के लिए इसके दण्ड पर चतुरस्र चिह्न होता है।

"ब्रह्मणश्चतुरस्रकः"

50. **त्र्यस्रि**-उद्गातृचमस- उद्गाता संज्ञक ऋत्विज् का सोमरस भरने के लिए जो चमस होता है, उसे उद्गातृ चमस कहते हैं। पहचान के लिए इसके दण्ड पर त्र्यस्रि (त्रिकोण) चिह्न होता है।

"उद्गातृणां च त्र्यस्रिः स्यात्"

51. **पृथु**-यजमानचमस यजमान के लिए जो चमस होता है, उसे यजमान चमस कहते हैं। पहचान के लिए इसका दण्ड पृथु (विस्तृत / चौड़ा) होता है।

"याजमानः पृथुः स्मृतः"

52. **अवतष्ट**-प्रशास्तृचमस प्रशास्ता नामक ऋत्विज् के लिए जो चमस होता है, उसे प्रशास्तृचमस कहते हैं। पहचान के लिए इसका दण्ड नीचे की ओर झुका रहता है।

"प्रशास्तुरवतष्टः स्यात्"

53. **उत्तष्ट**-ब्राह्मणाच्छंसिचमस- यह ब्राह्मणाच्छंसी नामक ऋत्विज् का चमस है। इसकी पहचान यह है कि इसका दण्ड ऊपर की ओर मुड़ा रहता है।

"उत्तष्टो ब्रह्मशासिनः"

54.**विशाखी**-पोतृचमस- यह पोता नामक ऋत्विज् का चमस है। इसका दण्ड द्विमुख जैसा होता है। इस द्विमुख की आकृति को विशाख कहा गया है। इसी विशाखी का रूपान्तर वैशाखी भी है, जिसका उपयोग एक पैरवाले लोग करते हैं।

"पोतुरग्रे विशाखी स्यात्"

55.**द्विगृहीतक**-नेष्टृचमस यह पात्र नेष्टा नामक ऋत्विज् का चमस पात्र है। इसके दण्ड में पकड़ने के लिए दो तरह की आकृति बनी होती है।

"नेष्टुः स्याद् द्विगृहीतकः"

56. **रास्नावान्**-अच्छावाक् चमस- यह पात्र अच्छावाक् नामक ऋत्विज् का चमस पात्र है। इसके दण्ड में रस्सी लिपटी हुई हो, ऐसा चिह्न बना रहता है।

"अच्छावाकस्य रास्ना च"

57. **मयूख-आग्नीध्रचमस**- यह पात्र आग्नीध्र नामक ऋत्विज् का चमस पात्र है। इसका दण्ड त्रिकोणाकृति का बना होता है।

"आग्नीध्रस्य मयूषकः"

58. **सप्तदशाररथचकम्** - रथ के चक्र में अक्ष से निचले हिस्से तक को जोड़ने वाला दण्डा अरा कहलाता है। ऐसे सत्रह अरों वाला रथ का चक्र सप्तदशाररथचक्र कहलाता है।

59. **राजासन्दी**- सोम को राजा कहा जाता है। "सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा" (शु.य. सं.-9/40) पूजनीय होने से उसे देवयजन में आसन्दी पर स्थापित किया जाता है। यह चार पाये की मूंज से बीनी रहती है।

"औदुम्बरीमासन्दीम्"

60. **ग्रहपात्रम्**- ये पात्र दर्शपूर्णमास याग में प्रयुक्त उलूखल के आकार के होते हैं। अनेक होने के कारण इनमें अलग अलग चिह्न होते हैं। इनमें सोमरस लेकर आहुति दी जाती है, इनके निर्माण के लिए विकङ्कत काष्ठ को उपयुक्त माना गया है।

"ग्रहचमसद्रोणकलशादीनि"

अग्न्याधान प्रयोग हेतु आवश्यक सामग्री

आधानौपयिकानि द्रव्याणि पात्राणि च
अग्न्याधान हेतु आवश्यक द्रव्य एवं पात्र

अरणिद्वयम् **(अधरारणिः,उत्तरारणिश्च)**	अधरारणि और उत्तरारणि।	**अग्निमन्थनार्थम्** अग्निमन्थन और अग्निजनन हेतु
मन्थिप्रमन्थिनौ	अग्निमन्थन के लिए मन्थी तथा प्रमन्थी।	

अष्टौ पार्थिवास्सम्भाराः (मृत्सम्बद्धाः)
आठ पार्थिव सम्भार (मिट्टी और रेत से सम्बन्धित)

सिकताः	रेत/बालू	**अग्निनिधानात् पूर्वमेते कुण्डेषु क्षेपणीयाः।** इन सभी को अग्नि स्थापन से पूर्व कुण्डों में स्थापित करना है।
ऊषरमृत्	ऊसर/सूखे स्थान की मिट्टी	
मूषिकोत्खाता मृत्	मूषक द्वारा खोदी गई मिट्टी	
अशोष्यजलाशयमृत्	ऐसे जलाशय की मिट्टी जिसका जल कभी न सूखा हो	
शर्कराः (क्षुद्रपाषाणाः)	कंकड़	
वल्मीकमृत्	दीमक की बाम्बी की मिट्टी	
सूकर (वराह) मुखोत्खाता मृत्	वराह द्वारा खोदी गई मिट्टी	
हिरण्यम्	सोना	

सप्त वृक्षसम्बन्धिनः (वार्क्षाः) सम्भाराः

सात वार्क्ष (वृक्षसम्बन्धी) सम्भार (वृक्ष और वनस्पति से सम्बन्धित)

अश्वत्थकाष्ठशकलानि	पीपल की लकड़ी के टुकड़े	**अग्निनिधानात् पूर्वमेते कुण्डेषु क्षेपणीयाः।** इन सभी को अग्नि स्थापन से पूर्व कुण्डों में स्थापित करना है।
औदुम्बरकाष्ठशकलानि	उदुम्बर/गूलर की लकड़ी के टुकड़े	
शमीकाष्ठशकलानि	शमी वृक्ष की लकड़ी के टुकड़े	
अशनिहतवृक्षकाष्ठशकलानि	बिजली से आहत वृक्ष की लकड़ी के टुकड़े	
पलाशकाष्ठशकलानि	पलाश वृक्ष की लकड़ी के टुकड़े	
विकङ्कतवृक्षशकलानि	विकंकत वृक्ष की लकड़ी के टुकड़े	
पद्मपत्राणि	कमल के पत्ते	

अन्यावश्यकवस्तूनि

अन्य आवश्यक वस्तुएँ

जलम् **(शीतमुष्णं च)**	ठण्डा और गर्म जल।	**पत्नीयजमानयोः स्नानार्थम्** यजमान और यजमान पत्नी के स्नानार्थ
दुकूलवस्त्राणि	रेशमी वस्त्र	**तयोरेव परिधानार्थम्** यजमान और यजमान पत्नी के परिधानार्थ
ग्रामादिचिह्नभूतस्य अश्वत्थवृक्षस्य फलवत्यः तिस्रः समिधः	ग्रामादि के प्रसिद्ध पीपल की फलसहित तीन(३) समिधाएँ	**ब्राह्मौदनिकाग्नावाधानार्थम्** ब्रह्मौदन (चातुष्प्राश्य)पकाने हेतु अग्न्याधानार्थ।
अश्वत्थवृक्षीयाः समिधो नव	पीपल वृक्ष की नौ(९) समिधाएँ	**गार्हपत्यादिषु त्रिष्वप्यग्निषु तदा तदा निक्षेपणार्थमेव विध्यनुरोधेन** गार्हपत्यादि कुण्डों में विधानानुरूप तत्तत्समय अग्नि को समर्पित करने हेतु
शमीमय्यः समिधो द्वादश	शमी वृक्ष की बारह(१२)समिधाएँ	
वैकङ्कत्यः समिधस्तिस्रः	विकंकत वृक्ष की तीन(३)समिधाएँ	
पात्रम् **पैत्तलं ताम्रमयं वा**	पीतल या ताम्र का पात्र	**ब्रह्मौदनपाकार्थम्** ब्रह्मौदन पकाने हेतु
शरावाः	मिट्टी के पात्र (थाली जैसे)	**तत्तदग्निप्रणयनार्थम्**

		विध्यनुसार अग्नियों के प्रणयन हेतु
दर्वी **पैत्तली ताम्रमयी वा**	पीतल या ताम्र की कड़छी	**ब्रह्मौदनोद्धरणार्थम्** ब्रह्मौदन को निकालने के लिए
घृतम् **गव्यं माहिषं वा**	गाय या भैंस का घी	**होमाभिघारणाद्यर्थम्** होम और अभिघारणादि के लिए
वत्सतर्यः तिस्रः	गाय की तीन साल अवस्था वाली बछिया – तीन	**अध्वर्यवे दानाय** अध्वर्यु को दान करने हेतु
यज्ञियवृक्षकाष्ठानि	यज्ञीय वृक्षों के काष्ठ (समिधा)	**अग्निसमिन्धनार्थम्** अग्नि प्रज्वलित करने हेतु
अश्वः	घोड़ा	**अभ्यायतनेषु पदनिक्षेपणाद्यर्थम्** मण्डप की शुद्धि के लिए परिक्रमणार्थ
अजः	बकरी	**आयतनसमीपे बन्धनार्थं दक्षिणार्थं च** यज्ञशाला के समीप बान्धने तथा दक्षिणा के लिए
सिकताः	रेत/बालू	**अग्निभिः सह ग्रहणार्थम्, उपयमनार्थम्** उपयमन के हेतु
रथचक्रम्	रथ का पहिया	**आवर्तनार्थम्** आवर्तन के लिए
आधानार्थदक्षिणाद्रव्याणि	**१. द्वादश गावः** – १२ गाय **२. अजः** - बकरी **३. पूर्णपात्रम्** - **अष्टाविंशत्युत्तरशत-संख्याकमुष्टिपरिमितं व्रीहियवादि-धान्यं पूर्णपात्रमित्युच्यते।**	**दक्षिणादानार्थ**

	४. **वासः** - वस्त्र ५. **मिथुनौ गावौ (स्त्रीपुंसरूपौ)** ६. **नवीनो रथः** – नया रथ ७. **वहनसमर्थोऽश्वः** - अश्व ८. **अनड्वान्** - बैल	
ऋत्विजः	ऋत्विज् अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता, आग्नीध्र	क्रियासम्पादनार्थ

इकाई 7

अग्न्याधान

अग्न्याधान अर्थात् श्रौत-स्मार्त्तादि कर्मों के अनुष्ठान हेतु अग्नि की स्थापना करना। जैसा कि पूर्व में हमने जाना कि दो प्रकार के कर्म वेदोदित हैं- श्रौत तथा स्मार्त्त। इन दोनों कर्मों के विधानों को श्रौत एवं गृह्यसूत्रों में विस्तार से निर्देशित किया गया है। कल्प वेदाङ्ग पूर्णरूप से इन्हीं श्रौत-स्मार्त्त कर्मों के अनुष्ठान को बतलाता है। पाक, हविर् तथा सोम इन तीन संस्थाओं के विषय में भी हमने जानकारी प्राप्त की है । इन तीनों संस्थाओं का आधार अग्नि है, अतः पाक संस्था हेतु स्मार्त्ताग्नि का आधान एवं हविःसोम संस्थाओं हेतु श्रौताग्नि का आधान निर्दिष्ट है। इस इकाई में हम श्रौताग्नि जोकि हविर् और सोमसंस्थाओं का मूल है, के आधान का विवरण और सूत्रोक्त विधान जानेंगे।

अग्न्याधान का अधिकारी तथा काल

अग्न्याधान में **'वसन्ते वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, ग्रीष्मे राजन्यः, शरदि वैश्यः'** विधि के अनुसार तीनों वर्णों का समान अधिकार है ,काल मात्र भिन्न है। इन वर्णों का उपनयन काल भी यही है, वय भिन्न है- ८, १२, १६। आधान के लिए **'जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत'** इस विधि को यौवन अवस्था का लक्षक मानकर सन्तान न होने पर भी यौवन अवस्था में आधान करने का अधिकार माना गया है। श्रौतकर्म के अनुष्ठान के लिए आधान के द्वारा तीनों या पाँचों अग्नियों को सिद्ध कर लेना आवश्यक है। अर्थात् जो व्यक्ति श्रौतकर्मों के अनुष्ठान करने की इच्छा रखता है वह सर्वप्रथम आधान के द्वारा अग्नियों को सिद्ध कर ले। तिथि, वार, नक्षत्र, शुभ रहे और शुक्रास्तादि दोष न रहे यह देखकर आधान का आरम्भ करना चाहिए।

कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार अमावस्या तिथि एवं कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, हस्त, चित्रा और फल्गुनी नक्षत्रों में अग्न्याधान करना चाहिए, इसके अतिरिक्त वर्णानुसार ऋतुओं का भी निर्देश प्राप्त होता है-

अमावास्यायामग्न्याधेयम् ॥
कृत्तिकारोहिणीमृगशिरःफल्गुनीषु ॥
हस्तो लाभकामस्य ॥
चित्रा च क्षत्रियस्य ॥
वसन्तो ब्राह्मणब्रह्मवर्चसकामयोः ॥
ग्रीष्मः क्षत्रियश्रीकामयोः ॥
वर्षाः प्रजापशुकामवैश्यरथकृताम् ॥ का०श्रौ० ४/७

जिस दिन आधान से अग्नि सिद्ध हो जाए उसी दिन सायंकाल से अग्निहोत्र का आरम्भ विहित है। **सायमुपक्रमः प्रातरपवर्गः** सायं आरम्भ करके प्रातः समाप्त करने पर एक अग्निहोत्र कहलाता है। जो व्यक्ति जीवनपर्यन्त सायं-प्रातः अग्निहोत्र है करता, वह '**अग्निहोत्री**' कहलाता है।

जो व्यक्ति इष्टिपूर्वक आधान करेगा, वह उस दिन सायं प्रातःकाल अग्निहोत्र करते हुए पूर्णिमा आने पर– पौर्णमासेष्टि, अमावास्या आने पर- दर्शेष्टि का अनुष्ठान करेगा। इष्टि का उपक्रम पूर्णिमा तथा अपवर्ग अमावस्या है। यावज्जीवन इस प्रकार अनुष्ठान करने वाला **'दर्शपूर्णमासयाजी'** कहलाता है। इस व्यक्ति को सायं प्रातः अग्निहोत्र करना अनिवार्य है।

जो व्यक्ति आधान के अनन्तर सोमयाग करने की इच्छा रखता है वह आधान के अनन्तर वसंत में सोमयाग करे तथा वह **'सोमयाजी'** कहलाता है, सोमयाजी के लिए सायं प्रातः अग्निहोत्र, पर्वकाल में दर्शपूर्णमासेष्टि करना अनिवार्य है। इन तीनों प्रकारों में विकल्प से एक पक्ष को लेकर अनुष्ठान हो सकता है। अग्निहोत्र का अनुष्ठान सर्वत्र अनिवार्य है अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के लिए अग्निहोत्र, इष्टि, सोम- ये तीनों कर्म नित्य भी हैं और काम्य भी। काम्य कर्म कामना होने पर किया जाता है, न होने पर छोड़ दिया जा सकता है। नित्य कर्म का अनुष्ठान आवश्यक है। नित्य कर्म के अनुष्ठान न होने से पातित्य-पाप होता है तथा काम्य के अनुष्ठान न होने से पातित्य नहीं है।

श्रौताग्नि का स्वरूप

गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय, सभ्य एवं आवसथ्य - इन पांच संस्कृत अग्नियों को एकसाथ "पञ्चाग्नि" कहते हैं । कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय इस अग्नित्रय में सारे श्रौतयज्ञ संपन्न होते हैं। यज्ञवेदी के पश्चिमभाग में रक्षित गार्हपत्याग्नि ही साग्निक गृहस्थ की यज्ञशाला में सर्वदा रक्षित होती है। इसे "आकर अग्नि" भी कहते हैं क्योंकि अन्य अग्नियाँ यहाँ से गृहीत होती हैं। जिस कुण्ड में यह रक्षित होती है, उसे गार्हपत्य कुण्ड कहा जाता है।

श्रौतानुष्ठानकाल में गार्हपत्य कुण्ड से मन्त्रपाठपुरःसर जो अग्नि ग्रहण कर दक्षिणाग्नि कुण्ड एवं आहवनीय कुण्ड में रक्षित होती है- इस अग्निद्वय को दक्षिणाग्नि एवं आहवनीय अग्नि कहते हैं। यज्ञवेदी के पूर्वभाग में स्थित आहवनीयाग्नि में देवताओं के प्रति एवं दक्षिणभाग स्थित दक्षिणाग्नि में पितृगण के प्रति आहुति प्रदत्त होती है। उपर्युक्त अग्नित्रय को एकसाथ त्रेताग्नि कहते हैं।

सभ्य एवं आवसथ्य अग्नियाँ सर्वप्रथम अग्निहोत्र-ग्रहणकाल में ही विकल्प के रूप में गृहीत होती हैं अर्थात् कोई व्यक्ति पूर्वोक्त त्रेताग्निमात्र का ग्रहण करते हैं, तो कोई पूर्वोक्त त्रेताग्नि के साथ अन्तिम अग्निद्वय का भी ग्रहण करते हैं। सभ्याग्नि और आवसथ्याग्नि की स्थापना आहवनीय कुण्ड से पूर्वभाग में और भी दूरी पर की जाती है। यज्ञकाल में कई आहुतियाँ इस अग्नि में दी जाती हैं।

आधान के प्रकार

आधान शब्द का अर्थ है- अरणि-मन्थन से निकली हुई अग्नि को निर्दिष्ट कुण्डों में मन्त्रोच्चारण पूर्वक रखना। आधान के तीन प्रकार हैं-

१. **होमपूर्वक आधान** - जीवन पर्यन्त मैं अग्निहोत्र करता रहूँगा, इस प्रकार संकल्प कर जो आधान किया जाता है वह होमपूर्वक आधान कहलाता है।

२. **इष्टिपूर्वक आधान** - जीवन पर्यन्त प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमा पर दर्शपूर्णमास करता रहूँगा, इस प्रकार संकल्प लेकर जो आधान किया जाता है वह इष्टिपूर्वक आधान कहलाता है।

३. **सोमपूर्वक आधान** - अग्निसिद्ध होते ही सोमयाग करूँगा, इस प्रकार संकल्प करके जो आधान किया जाए वह सोमपूर्वक आधान कहलाता है।

इस प्रकार तीन विभाग हैं।

गार्हपत्याधान - अनन्तर बुझायी गयी अग्नि के भस्म को हटा कर उस स्थान में अरणी को रख कर उसके समीप में सफेद रंग के घोड़े को बांध कर अरणि-मन्थन करेगा। मन्थन से अग्नि उत्पन्न होने पर यजमान अध्वर्यु को वर प्रदान करेगा। वर शब्द से गौ का ग्रहण माना गया है। गौ न मिलने पर उसका मूल्य या हिरण्य का प्रदान होता है। मन्थन से उत्पन्न अग्नि में नारियल का जटा ,गोमय के टुकड़े आदि डाल कर प्रज्वलित कराकर उसे वेदि के पश्चिम भाग में अवस्थित गोलाकार गार्हपत्य कुण्ड में रखेगा। यही गार्हपत्याधान है।

दक्षिणाग्नि का आधान – दक्षिणाग्नि के आधान में विकल्प है। चाहे गार्हपत्याग्नि से अश्वत्थ आदि काष्ठों से अग्नि का उद्धरण करके, अथवा आग्नीध्र द्वारा अन्य वैश्यादि कुल से अग्नि का आहरण करके, अथवा अग्नि का मन्थन करके दक्षिणाग्नि के कुण्ड में पूर्व स्थापित सम्भारों के ऊपर अग्नि का स्थापन करे।

आहवनीयाधान - अनन्तर अध्वर्यु अन्य ऋत्विजों के साथ घोड़े को चलाते हुये प्राची दिशा में अवस्थित चतुष्कोणात्मक आहवनीय कुण्ड के पास प्राङ्मुख होकर जाएगा। इनके दक्षिण भाग में ब्रह्मा रथ के चक्र को तीन बार आवर्तन करेगा और घोड़ा आहवनीय कुण्ड के प्राग्भाग में खड़ा रहेगा। प्राङ्मुख होकर अवस्थित घोड़े का आगमन आहवनीय कुण्ड के पश्चिम भाग की ओर हो ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। यही आहवनीय संभारों का '**आक्रमण**' कहलाता है। अनन्तर ब्रह्मा के द्वारा सामगान करते समय अध्वर्यु आहवनीय के पूर्व भाग में प्रत्यङ्मुख होकर आहवनीय कुण्ड में अग्नि को रखेगा। यही आहवनीयाधान है। इस प्रकार आधान हो जाने पर उस अग्नि में आज्यहोम कर काष्ठ प्रक्षेपों से प्रज्वलित करना चाहिए।

सभ्यावसथ्याधान - अनन्तर लौकिकाग्नि या मथिताग्नि से सभ्य आवसथ्य कुण्ड में आधान होगा यदि सभ्यावसथ्याधान करना हो।

अनन्तर अश्वत्थ और शमी वृक्ष के तीन तीन समिधाओं को प्रत्येक अग्नि में प्रक्षेप करेगा। बिना मन्त्र से अग्निहोत्र होम और पूर्णाहुति आज्य से ही करना है। यजमान सभी अग्नियों का उपस्थान करेगा। मन्त्रोच्चारण पूर्वक तत्तदग्नि के पास जाना उपस्थान है। उपस्थानानन्तर अध्वर्यु को वरदान करेगा। तदनन्तर प्रायश्चित्त होम होंगे। तदनन्तर यजमान संकल्पपूर्वक आहिताग्नि के नियम धारण करेगा। आहिताग्नि के अनेक नियम सूत्रकारों ने प्रतिपादित किए हैं ,जो वेदों में भी विद्यमान हैं। इतना आधान कर्म है।

अनन्तर आधान के अंगों का अनुष्ठान है। उनमें सर्वप्रथम आधानानन्तर ही आग्नेयीष्टि का अनुष्ठान पौर्णमासी आग्नेयीष्टि के समान करना है। इस इष्टि में अग्निदेवता और अष्टाकपाल पुरोडाश द्रव्य है। आधान क्रिया में जो कुछ भी ब्राह्मणग्रन्थों और सूत्रों में करने के लिए बतलाया है उनमें विचार करने पर वैज्ञानिकता प्रतीत होगी। अज को बांधना, अश्व को बांधना, ले जाना आदि को सोचने विचारने पर वैज्ञानिकता प्रतीत होगी।

अग्न्याधानपूर्व कर्म - जो दिन आधान करने को चुना गया है उसके पूर्व दिन में अपने जीवन में किये हुए सभी पापों के अनुसार प्रायश्चित्त से शुद्ध होकर- कूष्माण्ड होम, अभ्युदय श्राद्ध आदि का अनुष्ठान करके, अपनी पत्नी सहित यजमान नियम से रह कर, दूसरे दिन नित्य कर्मों से निवृत्त होकर आधान के लिए पत्नी के साथ संकल्प करेगा।

अग्न्याधान का फल - गार्हपत्य-आह्वनीय- दक्षिणाग्नि, इन तीन अग्नियों की सिद्धि है अथवा सभ्य आवसथ्य नामक दो अग्नि मिलाकर पांच अग्नियों की सिद्धि है। आधान स्वतन्त्र कर्म है किसी कर्म का अंग नहीं है।

अग्न्याधान विधि

संकल्प के अनन्तर यजमान ऋत्विजों का वरण करेगा। अध्वर्यु ,ब्रह्मा ,होता और आग्नीध ये चार ऋत्विज् अग्न्याधान कर्म में विहित हैं। वरणानन्तर अध्वर्यु अरणी को लावेगा। अरणी दो हैं- अधरारणी, उत्तरारणी। दोनों अश्वत्थवृक्ष की होती हैं। वह अश्वत्यवृक्ष ऐसा होना चाहिए जो शमी वृक्ष के सम्बन्ध से उत्पन्न हुआ हो। यह अरणी पूर्व संचित हो तो ठीक है यदि संचित न हो तो अध्वर्यु शमीवृक्ष के साथ उत्पन्न अश्वत्थ की एक शाखा को काट कर लाये और उस शाखा को दो भागों में चीर कर अरणी बनायेगा। अरणी का परिमाण श्रौत सूत्रों में निर्दिष्ट है - चार अंगुल ऊँची, बारह अंगुल चौडी, सोलह अंगुल लम्बाई ,यह बोधायनाचार्य का मत है, कात्यायनाचार्य के मतानुसार २४ अंगुल लम्बाई मानते हैं। ये दोनों अरणी छाया में सुखानी चाहिए, धूप में नहीं। तदनन्तर कुण्डों में डालने के लिए आठ पार्थिव सम्भारों को अलग-अलग एकत्रित करेगा।

पार्थिव सम्भार- १. सिकता (बालू) २. ऊषा (ऊषर भूमि की मृत्तिका) ३. आखु करीष- मूषिका के द्वारा खुदी हुआ मिट्टी) ४. वल्मीक- वपा (दीमकों द्वारा बनायी हुई मिट्टी) ५. सूद (नहीं सूखने वाले तालाब की

मिट्टी) ६. वराह विहित (वराह मुख से खुदी हुयी मिट्टी) ७. शर्करा (छोटे-छोटे पाषाण) ८. हिरण्य (स्वर्ण) ये आठ पार्थिव सम्भार हैं।

इसी प्रकार वृक्ष सम्बन्धी सम्भार सात हैं। ये वार्क्ष शब्द से जाने जाते हैं।

वार्क्ष सम्भार -१. अश्वत्थ काष्ठ, २. उदुम्बर (गूलर) काष्ठ, ३. पलाश काष्ठ, ४. शमी काष्ठ, ५. विकङ्कत काष्ठ (कठरे), ६. अशनिहत वृक्ष शकल (जिस वृक्ष पर बिजली गिरी हो उसका शकल), ७. पद्मपत्र ये ७ वार्क्ष सम्भार हैं, इनको भी एकत्रित करेगा ।

वेदि तथा गृहनिर्माण - तदनन्तर आहवनीय आदि अग्नियों के लिए गृहनिर्माण, गार्हपत्य वेदि के पश्चिम से गृहों का निर्माण होगा ,आहवनीयाग्नि का अलग गृह, गार्हपत्य या आहवनीय के दक्षिण भाग में दक्षिणाग्नि, आहवनीय के सामने सभ्याग्नि, उसके सामने आवसथ्य का स्थान। एक ही वेदि में तीनों अथवा पांचों अग्नियों के लिए कुण्ड बनाकर रखते हैं।

आधान के पूर्व दिन यजमान नापित के द्वारा क्षौरकर्म कराकर स्नानानन्तर दुकूल (एक प्रकार का रेशमी वस्त्र) धारण करेगा। यजमान-पत्नी भी नखनिकृन्तन करा कर स्नान के बाद दुकूल धारण करेंगी, दोनों नियमव्रत में रहेंगे।

ब्रह्मौदन पाकविधि

इसी दिन अध्वर्यु मध्याह्न में **'ब्रह्मौदन'** पाक करेगा। ऋत्विज् ब्राह्मणों के भोजन के लिए जो ओदन है वह ब्रह्मौदन कहलाता है। उसके पाक का यह प्रकार है- यजमान के **'औपासनाग्नि'** (विवाह के समय सिद्ध अग्नि में प्रतिदिन सायं प्रातः तण्डुल का होम विहित है, यह वैवाहिक अग्नि औपासनाग्नि शब्द से व्यवहृत है तथा यही स्मार्त्ताग्नि है)। इसके आधे भाग को अलग लेकर गार्हपत्य कुण्ड के पिछले भाग में रख कर यज्ञीय काष्ठों से प्रज्वलित करना चाहिए। एक बड़े पीतल अथवा ताम्बे के पात्र को धोकर जल भर कर उसमें चार शराव (तस्तरी) चावल को बिना धोये डाल कर पकाना चाहिए। तण्डुलांश थोड़ा रहते हुए पात्र को उतार लेना चाहिए। अग्नि से बाहर उतारना 'उद्वासन' कहलाता है। दर्वी(पीतल या ताम्रमयी) के द्वारा पक्व अन्न को लेकर उसी अग्नि में होम करना चाहिए। अवशिष्ट अन्न को चार भाग कर चारों ऋत्विजों को देकर अध्वर्यु को अपने भाग को अपने बायें हाथ में रखते हुए दाहिने हाथ से पात्र में विद्यमान अन्न में घी डाल कर तीन अश्वत्थ समिधाओं को उसी अग्नि में (जिससे चावल पकाया गया) रख देना चाहिए। इसको **'समिदाधान'** कहते हैं। अनन्तर ऋत्विज् अपने-अपने भाग का भक्षण करेंगे। अग्नि को रातभर प्रज्वलित कर रखना चाहिए। आधान के दिन प्रातः अध्वर्यु पहले से रक्षित अरणी को उस अग्नि में तपा कर पुनः अग्नि को बुझा कर अरणी को यजमान के हाथ में समर्पित करेगा। यजमान अरणी को हाथ में लेकर अभिमन्त्रण करते हुए अग्निमन्थन पर्यन्त अपने हाथ में ही रख कर बैठा रहेगा। अध्वर्यु पूर्व संचित सिकता बालू को समान रूप से दो विभाग कर एक अर्द्ध को पुनः दो भाग कर एक

भाग को उद्धनन, पर्युक्षण से संस्कृत गार्हपत्य कुण्ड में बिछाकर अवशिष्ट भाग को दक्षिणाग्नि कुण्ड में बिछायेगा। अवशिष्ट आधे भाग के तीन भाग (यदि सभ्य आवसथ्य अग्नि का आधान करना हो तो) आहवनीय कुण्ड, सभ्य-आवसथ्य कुण्डों में बिछाएगा। यदि सभ्य आवसथ्य का आधान नहीं है तो अवशिष्ट अर्ध को आहवनीय में ही बिछायेगा। इसी प्रकार अन्य पार्थिव संभारों के विभाग कर प्रत्येक कुण्ड में प्रक्षेप करेगा। इसी क्रम से ७ वानस्पत्य समिधाओं को क्रम से तत्तत्कुण्डों में रख कर ऊपर हिरण्य को रखेगा।

पवमानेष्टि

पूर्वोक्त आधान का फल मात्र अग्नियों की सिद्धि है। किन्तु मीमांसाभाष्यकार शबरस्वामी अग्नि सिद्धि के लिए तीन पवमानेष्टियों का भी अनुष्ठान आवश्यक मानते हैं। वार्तिककार भट्टपाद मानते हैं कि इष्टियों का अनुष्ठान तो आवश्यक है किन्तु आधान का अङ्ग बनाकर अनुष्ठान करना चाहिए। सांग आधान का फल है अग्निसिद्धि। इसका विशेष विचार मीमांसकों ने किया है। किसी भी प्रकार पवमानेष्टियों का अनुष्ठान अनिवार्य है। 'अग्नये पवमानाय' 'अग्नये पावकाय' 'अग्नये शुचये' इन वाक्यों से विहित यज्ञों को पवमानेष्टि कहते हैं। अग्निदेवता के एक होते हुए भी गुण के भेद से गुणी भिन्न हो जाता है। इस न्याय से तीन इष्टियाँ हैं। इन इष्टियों का द्रव्य अष्टाकपाल पुरोडाश है। इन इष्टियों के अनुष्ठान होने पर अग्नियों की सिद्धि हो जाती है।

पञ्च-भू-संस्कार

पञ्चभूसंस्कार अग्न्याधान प्रयोग का प्रारम्भिक विषय है अतः यहाँ इसका उल्लेख किया जाना उचित ही है।

पञ्चभूसंस्काराः - कुशैः त्रिप्रदक्षिणं परिसमुह्य। परिसमूह्य। परिसमूह्य। तान् कुशान् ईशान्यां परित्यज्य। गोमयोदकेन त्रिः उपलिप्य। उपलिप्य। उपलिप्य। स्फ्येन स्रुवमूलेन वा प्रागग्राः तिस्रो रेखा उल्लिख्य। उल्लिख्य। उल्लिख्य। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां रेखाभ्यः पांसून् उद्धृत्य। उद्धृत्य। उद्धृत्य। पुनः शुद्धजलेन अभ्युक्ष्य। अभ्युक्ष्य। अभ्युक्ष्य। आनीतमग्निं कुण्डस्य आग्नेय्यां दिशि निधाय। हुं फट् इति मन्त्रेण क्रव्यादाँशं नैर्ऋत्यां क्षिपेत्। उदकोपस्पर्शः। अग्निं त्रिर्भ्रामयित्वा। योनिमार्गेण नीत्वा। आत्माभिमुखमग्निं प्रतिष्ठाप्य।

॥ अथ चातुष्प्राश्यपचनविधिः ॥

ततः आरणीप्रदानानन्तरम् अस्तमिते सायं सन्ध्यां विधाय स्वकीयं परकीयं वाऽजं, गार्हपत्यागारे बध्नाति। यदि स्वकीयो भवति तदा प्रातः आरक्तानडुहे चर्मणि प्रागग्रीवे चत्वार हविष्यपात्राणि वृष्टतित्रयं पूर्णानि पात्राणि मिमीते प्रक्षिपति। ततस्तान् तण्डुलानालोप्य त्रिःप्रक्षाल्य गार्हपत्यस्थापिताग्नौ अधिश्रित्य चातुष्प्राश्यसंज्ञम् ओदनं पचति, पचेत्, पक्व इति ज्ञात्वा ततः उद्वास्य,ओदनमध्ये गर्त्तं कृत्वा। गर्त्तमध्ये घृतमासिञ्च्य तेन घृतेनाक्ता आश्वत्थ्यः तिस्रः समिधः प्रादेशमात्रीं हस्ते कृत्वा, ताभ्य एकामादायोत्थाय तस्मिन्नग्नौ- **सुमिधाग्निन्दुवस्यत घृतैर्बोधयुतातिथिम्। आस्मिन्हव्या जुहोतन॥** इति मन्त्रेणादधाति। ततः अध्वर्युरुपविश्य हस्तस्वरेण **सुसमिद्धाय शोचिषे घृतन्तीव्र जुहोतन। अग्नये जातवेदसे॥** इति मन्त्रं जपति। ततः उत्थाय द्वितीयाम् **तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य॥** इति मन्त्रेणादधाति। **उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्य्यत। जुषस्व समिधो मम॥** इति मन्त्रेण तृतीयाम् अत्र समिद्वतीभिर्घृतवतीति श्रुतेः। ततो यजमानश्चतुर्णाम् ऋत्विजां ब्रह्मादिक्रमेण पादौ प्रक्षाल्य, उपविश्य, एतान् गन्धमाल्यादिभिः अभ्यर्च्य, अन्नं संकल्प्य भोजयेत्। इदमर्चनं छन्दोभ्यः स्वाहा। तत्र छन्दांसि एतद्वः पाद्यम्। छन्दोभ्य इदमासनं पूजनम्। इदमन्नं परिवेष्यं परिवेष्यमानं चातृप्त्यै छन्दोभ्यः स्वाहा छन्दांसि प्रीयन्ताम्। छन्दांस्यनेन प्रीणीम इति श्रुतेः। ततस्ते ब्रह्मादयश्चत्वारो ऋत्विजस्तमोदनं प्राश्नन्ति। ततोऽशनानन्तरं शुद्धो भूत्वाऽध्वर्युः स्फ्यं गृहीत्वा राद्धस्ते ब्रह्मौदन इत्याह। ततो यजमानो वरं ददाति। अस्य चातुष्प्राश्यपचनकर्मसमृध्यर्थं यथाशक्तिसुवर्णद्रव्यादिवरं ब्रह्मादिभ्यो ऋत्विग्भ्योऽहं सम्प्रददे। ततस्तैर्विभज्य समं ग्राह्यम्। ततो यजमानपत्न्याश्च भोजनम्। अस्मिनपक्षे चातुष्प्राश्यपचनाभावस्तस्मिन् काले उक्तविधिना अग्निस्थापनान्तं कृत्वा पुनरुपसंस्थापितमग्निं स्वस्वप्रयत्नोपविशमेत्। इति।

॥ अथाधानप्रयोगः ॥

ततः पूर्वमेव यजमानेन देहशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं कृत्वा उक्तदिने आरम्भणीयं तदुक्तम्- कृतावस्थस्य गतेथ वत्सरे केनापि कार्येण तदाधिकारिणः। श्रौतं तदाधानं कुर्वीत सन्कृच्छ्रत्रयं चात्मविशुद्धये स्मृतम्॥ ततो यजमानः सुस्नातः पनी च देवतार्चनादिनिर्णेजनान्तं, वैश्वदेवं कृत्वा, ब्राह्मणान् नमस्कृत्य, कुशास्तृते पीठासने प्राङ्मुख उपविश्य, पत्नी तद्दक्षिणात् उपविश्य, कुशोपग्रहो, बद्धशिखी सोत्तरीय, आचम्य प्राणानायम्य गणेशकुलदेवतादीन्नमस्कृत्य, साक्षतहस्तः सुमुखश्चैकदन्तश्चेत्यादिस्मरणपूर्वकं देशकालौ स्मृत्वा **तत्सत् परमेश्वरप्रीतये नित्यनैमित्तिककाम्यकर्मानुष्ठानसिद्ध्यर्थं श्रौताधानं सायं प्रातरग्निहोत्रहोमं कर्तुं गणेशपूजनं स्वस्तिवाचनं मातृकापूजनं वसोर्द्धारापूर्वकं नान्दीश्राद्धमहं करिष्ये।** श्राद्धं समाप्य । पुनर्देशकालौ स्मृत्वा **दर्शपौर्णमासादि वागानुष्ठानार्थमग्न्याधेयमहं करिष्ये** पुनः **श्रौताग्नीनाधातुम् ऋत्विजो वृणे** इति संकल्प्य अथवा देशकालौ कीर्तनान्ते **श्रौताग्नीनाधातुं गणेशपूजनादिश्राद्धान्यहं करिष्ये।** आधानं सर्व समाप्य होमकालप्राप्ते। देशकालौ संकीर्त्य **सायंप्रातरग्निहोत्रहोमं कर्तुं गणेशपूजनं स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं करिष्ये।** इति संकल्प्य युगपत् पृथक् वा कुर्यात्। ततः ऋत्विग् वरणम्। उत्तरतोपचारो यज्ञः। सर्वकर्मविहारस्यौत्तरतो कार्यः। प्राच्युदग् वा सर्वाणि कर्माणि प्राक्संस्थानि उदक्संस्थानि कुर्वतीति परिभाषासूत्रात् ततः ब्रह्मादिक्रमेण प्राङ्मुखोदङ्मुखो वोपविश्य ऋत्विजो दक्षिणजान्वालभ्य **अमुकगोत्रोमुकप्रवरोऽमुकशर्मा नित्यनैमित्तककाम्यानुष्ठानसिद्ध्यर्थं परमेश्वरप्रीतये श्रौताग्नीनाधास्ये तत्रामुकगोत्रामुकशर्मन् मे त्वं ब्रह्मा भव।** एवमेव होताध्वर्युरग्नीत्। अथवा **यजमानोऽहम् अमुकगोत्रामुकप्रवरान्वितामुकशर्माणं ब्राह्मणं श्रौताधानाख्ये कर्मणि ब्रह्मत्वेन त्वामहं वृणे। वृतोऽस्मि** इति प्रतिवचनम् । एवमेव **श्रौताधानाख्ये कर्मणि होतृत्वेन त्वामहं वृणे।**

श्रौताधानाख्ये कर्मणि अध्वर्युत्वेन त्वामहं वृणे। श्रौताधानाख्ये कर्मणि आग्नीध्रत्वेन त्वामहं वृणे। ते मधुपर्कादिना पूजनीयाः। यजमानस्यापि अहतवस्त्रं समन्त्रकं धार्यम्। गन्धादिमाङ्गल्यं सम्पादयेत्। आशीश्च दद्यात्। आशीर्वादमंत्राः- **अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाग्नेहङ्गृहपतिना भूयासꣳ सुगृहपतिस्त्वम्मयाग्ने गृहपतिना भूयाः८ । अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः८ सूर्य्यस्यावृतमन्वावर्त्ते॥ स उपक्षितेऽग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाग्नेहं गृहपतिना भूयासं सुगृहपतिस्त्वं मयाग्ने गृहपतिना भूया इति नात्र तिरोहितमिवास्त्वस्थूरिणौ गार्हपत्यानि सन्त्वित्यनार्तानि नौ गार्हपत्यानि सन्त्वत्येवै तदाहं शतं हिमा इति शतं वर्षाणि जीव्यासमित्येवै तदाह तदप्येतदृषिणा नाद्रियेत हि भूयांसि शतादृर्षेभ्यः पुरुषो जीवति।** ततो यजमानः वैकल्पिकस्मरणम्। **कृत्तिकादिस्वग्नीनाधास्ये। महानसाग्नेराहरणम्। यजमानपत्न्याश्च रात्रौ भोजनम्। गोमयपिण्डैरग्नेर्धारणम्। उषःकाले तच्छमनम्। सम्भारात् सम्भरिष्ये। उपरि हिरण्यं धारयिष्ये अष्टासु विक्रमेष्वाहवनीयाधानम्। उदिते मन्थनम्। जाते वरदानम् अश्वपरिक्रमणम् अश्वाभावे अनड्वान्। अश्वाभावे प्रैषाभावः। इध्माग्रमालभ्यद्यौरिवेति जपः। सार्पराज्ञीरुपस्थानम्। गावो दक्षिणा त्रिरात्रमग्निधारणं पूर्णाहुत्यन्तमाधानं इष्ट्यन्तं वा। एतान् वैकल्पिकपदार्थांस्ते अध्वर्युप्रत्ययेनावधारिता। ततो वपनपक्षे श्रौताग्न्याधेयाङ्गवपनं करिष्ये।** इति सङ्कल्प्य वपनं स्नानं तदङ्गं च कृत्वा अहते वाससी परिधाय पत्नीं च ततो अध्वर्युः ऋत्विक् यजमानैः सह महानसात् समृद्धम् अग्निं मृत्पात्रे गृहीत्वा **ऋचं वाचमिति** शान्तिमन्त्रं मङ्गलगीतवाद्यपुरःसरं यजमानपत्नी अन्वारब्धान्तमग्निं गार्हपत्यसमीपमानीय तत्र खरे पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वा आत्माभिमुखं स्थापयेत्। **पञ्चभूसंस्काराः - कुशैः त्रिप्रदक्षिणं परिसमूह्य। परिसमूह्य। परिसमूह्य। तान् कुशान् ईशान्यां परित्यज्य। गोमयोदकेन त्रिः उपलिप्य। उपलिप्य। उपलिप्य। स्फ्येन स्रुवमूलेन वा प्रागग्राः तिस्रो रेखा**

उल्लिख्य। उल्लिख्य। उल्लिख्य। अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां रेखाभ्यः पांसून् उद्धृत्य। उद्धृत्य। उद्धृत्य। पुनः शुद्धजलेन अभ्युक्ष्य। अभ्युक्ष्य। अभ्युक्ष्य। आनीतमग्निं कुण्डस्य आग्नेय्यां दिशि निधाय। हुं फट् इति मन्त्रेण क्रव्यादाँशं नैर्ऋत्यां क्षिपेत्। उदकोपस्पर्शः। अग्निं त्रिर्भ्रामयित्वा। योनिमार्गेण नीत्वा। आत्माभिमुखमग्निं प्रतिष्ठाप्य। ततः सूर्यास्तसमये आहवनीयपूर्वस्यां दिशि यजमानः प्राङ्मुखोदङ्मुखो वा उपविश्य सोऽयं ग्रहः इमं मन्त्रं जपेत्। **ॐ देवाः पितरः पितरो देवा योहमस्मि स सन्यजे। यस्याहमस्मि न तमन्तरयामि स्वममन्तरयामि स्वमम् इष्टं स्वं श्रान्तं स्वं सुहुतमस्तु।** अनेन देवान् पितॄंश्चौपह्वयतीत्यर्थः। ततो यजमानः पूर्वेणाहवनीयागारे प्रविशति। गार्हपत्यस्य दक्षिणद्वारेण पत्नी प्रविशति। अत्रागार-प्रकरणपक्षाभाव-द्वारप्रवेशाभावः। केवलाग्निशालाप्रवेशः। ततोऽध्वर्युः पूर्वोक्तलक्षणेन स्थाप्य अहतवस्त्रद्वयेन परितो वेष्टय आरणीं यजमानो ध्यानं च कुर्यात्। आरणी मूलभागादारभ्याग्रपर्यन्तं दक्षिणसव्यहस्ताङ्गुष्ठाभ्यां मानं कार्यम्। **प्रथमादिचतुर्विंशति अंगुलैर्दीर्घ्यमानम्(२४)। एवमुत्तरारण्यां मानम्। प्रथमादिषडङ्गुलं(६) विस्तारमानम्। प्रथमादिचतुरङ्गुलमुच्छ्रायमानम्। उत्तानाधरारणी प्राक्शिरामूलादारभ्य दक्षिणसव्यहस्ताङ्गुष्ठपर्वणा प्राक्संस्थं क्रमेण कार्यम्। ततो अधरारण्या अग्रान्मूलपर्यन्तम् अवयवकल्पनम्। ततोऽङ्गुलमेकं शिरः। ततोऽङ्गुलमेकं नेत्रम्। ततोऽङ्गुलमेकं मुखम्। एकाङ्गुला कटी। द्वयमङ्गुलं वस्ती। द्वे अङ्गुले योनिः। अङ्गुलचतुष्टयमुरु। त्रयमङ्गुलं जङ्घे। एकमङ्गुलं पादौ।** इति सावयवमरणीरूपं ध्यात्वा निर्दिशेत्। **श्रौते कर्मसाधनभूतस्याग्ने इमे अरणी योनिरूपे तत्रेयमधरा इयमुत्तरा** हस्तेन निर्दिशेत्। गन्धादिभिः सम्पूज्य देशकालौ सङ्कीर्त्य **मम यजुर्वेदस्य माध्यन्दिनी वाजसनेयी शाखाध्यायिनो अमुकशर्मणो श्रौताग्न्याधानीयफलप्राप्तये अरण्योः पूजनमहं करिष्ये। अग्नेर्यो निरूपाभ्यां नमः** पाद्यम् अर्घ्यम् आचमनं मधुपर्कं पुनराचमनं वस्त्रादिकं च समर्पयेत्। ततो नमस्कारः। अध्वर्युः

यजमानाय अरणीद्वयं प्रयच्छति। अध्वर्युहस्ताभ्यां धृत्वा **श्रौतकर्मसाधनभूतस्याग्नेः योनिरूपे इमे अरणी तत्रेयमधरा इयमुत्तरा गृह्यताम्** इति तद्हस्ते प्रयच्छेत्। **इमानि यज्ञपात्राणि गृह्यताम्** परिगृह्यते। पत्नी तद्धस्ताद् अधरारणिं गृहीत्वा अङ्के निदधाति। यजमानोऽप्यङ्के निधाय पुनः कुङ्कुमपुष्पैः सम्पूज्य ततो यजमानाभ्यां गन्धादिमाङ्गल्यं विधाय आशीर्दद्यात्। तत्र मन्त्रः। **ध्रुवासि द्रुवो॒यँय्व॑जमानो॒स्मिन्नायतने प्र॒जया॑ पशु॒भिर्भू॑यात्। घृते॑न द्यावापृथिवी पूर्व्ये॒थामि॑न्द्र॒स्य च्छ॒दिर॑सि वि॒श्वज॑नस्य॒ च्छाया॑॥** अथैवमभिपद्यवाचयति। **ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयादिति वै वयं कामं कामयामहे सोऽस्मै कामः समृद्ध्यते**। ततो अरणीद्वयं नमस्य पीठे स्थापयेत्। इत्यारणीप्रदानम्। ततः चातुष्प्राश्यपचनपक्षे पूर्वोक्तविधिना कृत्वा अथवा संवत्सरपर्यन्तं कृत्वा अथवा न कुर्यादिति पक्षत्रयं सूत्रे उक्तत्वात्। नक्षत्राद्यनादरेऽपि अग्निस्थापना भवत्येव। सूत्रे उक्तत्वात्। ततः परिश्रमनाशार्थं रात्रौ किञ्चित् निद्रां विधाय पुनरुषसि स्नानं सर्वैः कृत्वा यजमानो दीक्षावस्त्रं परिधत्ते पत्नी च। ततो अध्वर्युः व्युष्टायामरुणोदयवेलायां स्थापितमग्निं स्वप्रयत्नोपशमेत्। ततो अध्वर्युः **वाचं यच्छ** यजमानं प्रेषयति। ततो यजमानः पूर्णाहुतिहोमपर्यन्तं वाग्यतो भवति। ततो अध्वर्युः गार्हपत्यखरे (कुण्डे) पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वा पुनर्वज्रेण त्रिरुल्लिख्य यजमानेनान्वारब्धे पुनः खरः कार्यः। ततः अस्यूत्कराणां मध्ये निर्वापं कृत्वा वृत्तं सम्पादनीयम्। खरस्य परितः पञ्चाशत् शर्कराः संलग्ना निदधाति (५०)। ततो आहवनीये पञ्चभूसंस्कारादिशर्करान्तम् अत्र शर्कराणां त्रिसप्तति (७३)। उपादिसम्भारैश्चतुरस्रमाहवनीयं कुर्यात्। ततो दक्षिणाग्निखरे एवं तथैवात्र द्वाविंशतिशर्करा। अर्द्धचन्द्राकारं दक्षिणाग्निखरम्। गार्हपत्यवत् सभ्यकरणं तथापि पञ्चाशत् शर्करास्ततो अध्वर्युराग्नीध्रं प्रेषयति। अश्वमानीय पुरस्तात् प्रत्यङ्मुखं स्थापयति। ततः उदिते मन्थनम्। ततो गार्हपत्यस्य पश्चात् दर्भास्तृतायां भूमौ अधरारणीमुत्तरायां निधायोत्तरारणेरोशानादिकस्थमष्टाङ्गुलं प्रथमं छित्वा चात्र वुध्ना गर्तमध्ये प्रवपति। ततो अधरारणेः मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा अग्राश्च द्वादशाङ्गुलं त्यक्त्वा चतुरङ्गुलमन्तराले भवति। तन्मध्ये

अग्निमन्थनार्थं कृत्वा प्राच्यामग्निनिःसारणाय वाहिनीं कृत्वा। ततो यजमानः प्राङ्मुखं यन्त्रं धृत्वा प्रत्यङ्मुखं पत्नी वाध्वर्युर्मन्थयति। अग्नौ जायते यजमानो अध्वर्यवे वरं ददाति। अध्वर्योर्वरं तुभ्यमहं सम्प्रददे। ततस्तमग्निं निधाय तं शुष्कगोमयचूर्णावकीर्णखर्परे जातमग्निमभिलक्षीकृत्य यजमानो मुखेन श्वासं प्रेरयति फूत्कारं करोति। प्राणममृतेदधेदितिमन्त्रेण। ततो अग्निं यज्ञकाष्ठैर्ज्वलन्तं कृत्वा गार्हपत्यखरे स्थापयति। तत्रमन्त्रः। **ॐ भूर्भुवः आंगिरसानां त्वा देवानाम्** इति स्थापनमंत्रः । **येषां च भृगुप्रवरस्तेषां भृगूणान्त्वा देवानि। भृग्वाङ्गिराव्यतिरिक्तानाम् आदित्यानां त्वा देवानाम्।** इत्येव भवति । ततो द्वाविंशतिइध्मकाष्ठं त्रियूनं बध्वा गार्हपत्ये मूलभागे अधिश्रयेत्। ततो खर्परे गृहीत्वा आहवनीयं प्रतिनयेत्। अश्वस्य पुरस्तादग्नेतोनीयते। यजमानो धूमं गृह्ननुगच्छति पत्न्या सह अध्वर्युरत्रपक्षे **वामदेव्यं** गायति। **कयानश्चित्र** इत्यृचे । ततो अध्वर्युरिध्माग्निना अश्वस्य पदं द्विवारमुपस्पृश्य दक्षिणपादेन सम्भारानधिष्ठाय तृतीयेनोपस्पर्शनाग्निस्थापनम् । **ॐ भूर्भुवः स्वः आदित्यानां त्वा देवानां व्रतपते व्रतेनादधे** इति । पक्षे ब्रह्मणो **बृहत्सामगानम्** । **मूर्द्धानन्दिवेति** । ततो यजमानो अग्नेः पुरस्तात्परिक्रम्योपविश्य इध्मस्य पूर्वार्धं गृहीत्वा द्यौरिवेतिजपः। **ॐ भूर्भुवः॒ स्व॒र्द्यौरि॑व भूम्ना पृ॑थि॒वीव॑ वरि॒म्णा। तस्या॑स्ते पृथिवि देवयजनि पृ॒ष्ठेऽग्निम॑न्ना॒दमन्ना॒द्याया॑दधे॥** तत उत्थाय आयङ्गौरित्याद्याभिस्तिसृभिः सार्पराज्ञिभिरुपतिष्ठते। **आय॒ङ्गौः॑ पृ॒श्नि॑रक्रमी॒दस॑दन्मा॒तर॑म्पु॒रः॑ । पि॒तर॑ञ्च प्र॒यन्त्स्वः॑॥ अ॒न्तश्च॑रति रोचना॒स्य प्रा॒णाद॑पानती। व्य॑ख्यन्महि॒षो दिव॑म्॥ त्रि॒ष्टु॒शद्धा॑म॒ वि रा॑जति॒ वाक्प॑तङ्गा॒य धी॑यते॥ प्रति॑वस्तो॒रह॒ द्युभि॑॥** ततो अध्वर्युः गार्हपत्यात्खर्परे अग्निमादाय ज्वलन्तं दक्षिणाग्निखरे स्थापयति । ॐ भूर्भुवः आदित्यानां त्वेति देवयाज्ञिके। तूष्णीं स्थापयति इत्येके । ततः सभ्यस्य मन्थनं मथित्वा खर्परे निष्कास्य ततो यजमानः गां दीव्यध्वमिति ऋत्विजः प्रेषयति। ततो ब्रह्मादयो ऋत्विजो विहारस्योत्तरतः आनडुचर्म आस्तीर्य तस्योपरि अधोमुखं कांस्यपात्रं निधाय पञ्चकपर्दिकान् हस्ते गृहीत्वा गोपणीकृत्य **समेन जयामि विषमेन जीयसे** इत्युक्त्वा

कांस्यपात्रस्योपरि चतुर्वारं प्रक्षिपति। तदलाभे शकलादिभिर्युतं कुर्वन्ति न यजमानः। ततस्ते गां च दद्यात्। गां पणीकृत्य साङ्गतासिद्ध्यर्थं ब्रह्मादयो ऋत्विजः इयं वो गौः प्रतिगृह्यतां द्यौस्त्वेति प्रतिगृह्णामि। ततो दारुभिर्ज्वलन्तं सभ्याग्निं सभ्यखरे स्थापयति। **ॐ भूर्भुवः आदित्यानां त्वेति** । अतः प्रभृति सभ्यस्य धारणमुपस्थानं च सदा कार्यम्। अत्राग्निनामानि। **ब्रह्मा वै गार्हपत्यस्य दक्षिणाग्निस्तु ईश्वरः। विष्णुराहवनीयस्यादग्निहोत्रे त्रयोऽग्नयः ।** ततो अध्वर्युः पक्षे **श्यैतं, वारवन्तीयं, यज्ञायज्ञियं च** गायति प्रेष्यति। ब्रह्मा गायति वा। ततः सर्वानग्नीन् प्रदक्षिणं परीत्य च उदगुत्सृजति। ततोऽध्वर्युः पूर्णाहुतिं जुहोति। गार्हपत्योत्तरत आज्यस्थाल्यामाज्यनिर्वापः गार्हपत्येधिश्रित्य पर्यग्निकरणम्। दर्भैः खादिरं स्रुवं वैकङ्कतीं स्रुचं च सम्मृज्य, उद्वास्य, साग्राभ्यां कुशाभ्यामुत्पूय अवेक्ष्यस्रुवेण द्वादशचतुरो वा गृहीत्वा स्रुचं संपूर्णयास्कन्दयन्नुपरि समिधं धारयन्नाहवनीयं गत्वा समिधमाधाय उपविश्य दक्षिणजान्वालभ्य यजमानान्वारब्धः स्वाहेतिमन्त्रेण जुहोति। इदमग्नयेति त्यागः। देवयाज्ञिके विशेषः। आहवनीयस्योत्तरत उपविश्याहवनीयं परिस्तीर्य उत्थाय समिधमाधायोपविश्य जुहुयात्। अस्याः पूर्णाहुतेः समृद्ध्यर्थं दक्षिणां ब्रह्मणो अध्वर्यवे चाहं सम्प्रददे। यजमानस्य वाग्विसर्गः। ततो अध्वर्युः पूर्णाहुत्यन्ते तूष्णीम् अग्निहोत्रहोमः। अत्रैकस्मिन्नेवकाले सायंप्रातर्विततस्य प्रयोगद्वयविधानात्कालभेदा अवादगानिपरिस्तरणपर्युक्षणादिनी सकृदेव कर्त्तव्यानि। प्रधानाहुतयश्च भेदेन। तत्रैव कर्त्तव्यम्। प्रातर्होमकालसन्निकर्षात्तत्र प्रातर्होमधर्माः। होमाश्चाध्वर्युकर्तृकाः। तत्रायं क्रमः। देशकालौ संकीर्त्य **आधानाङ्गभूतं समस्तहोममहं करिष्ये।** ततो यजमानपत्न्याश्रान्तरेणापराग्निं गत्वा प्रदक्षिणमाहवनीयं परित्योपविशति तूष्णीमेवाचमनम्। पत्न्यप्येवमागत्य स्वस्थाने उपविश्याचमति। वाचं यच्छति च अध्वर्युः। अपरेणाहवनीयं कूर्चं निदधाति कुशान् वा। ततः आहवनीयादीनां त्रयाणां परिस्तरणम्। ततः प्रथमं गार्हपत्यं पर्युक्ष्य दक्षिणाग्निं पर्युक्ष्य गार्हपत्याहवनीयपर्यन्ता तोयधारा। आहवनीयं पर्युक्ष्य पूर्वेणाहवनीय होमद्रव्याहरणम्। गार्हपत्ये अधिश्रित्य तृणेनावज्योत्य आसिञ्च्य पुनरवज्योत्य त्रिरुद्वास्य

स्रुक्स्रुवौ प्रताप्य पाणिनां सम्मार्ज्य पुनः प्रतप्य उन्नयति यजमानस्विष्टन्। **ॐ उन्नय** हस्तं प्रदर्शयेत्। चतुरः स्रुवान्नुनयति। पञ्चावर्तिनः पञ्चस्रुवान्नुयति तदुक्तम्- जामदग्न्यवत्सेविदाआर्ष्टिषेणस्तथैव च। भार्गवच्यावन और्व पंचावर्तिन ईरितः। एवमाज्यादि चतुर्ग्रहणमुक्तम्। तत्र पञ्चस्रुवग्रहणम्। सर्वत्र पुरोडाशेऽपि पञ्चावदानरणम्। मध्यात्पूर्वार्द्धात्पश्चादुत्तरतो द्वे। स्रुक्दण्डोपरि अङ्गुल्यन्तरितां समिधां धारयेत्। मुखमात्रे धारयन् गच्छति। मध्ये निगृह्य उद्गृह्यावहनीयं गत्वोत्तरत उपविश्य सव्यहस्ते स्रुचं गृहीत्वा तूष्णीं समिधमाधाय दक्षिणं जान्वाच्य स्वल्पं जुहोति। अग्निं ध्यात्वा पूर्वाहुतिहोमः। इदमग्नये न ममेति यजमानत्यागः। शेषस्य पात्रान्तरे कृत्वा तत्रैव स्थापनम्। पुनर्गार्हपत्यं गत्वा चतुर्वारं गृहीत्वा समिधं धृत्वा तथैवागत्य समिधं हुत्वा सूर्यं ध्यात्वा होमः। सूर्याय न ममेति त्यागः। उभयशेषं समासिञ्च्य कूर्चे निधाय गार्हपत्यमवेक्षते प्रजापतिं ध्यात्वा तन्त्रेणोत्तराहुतिः। प्रजापतये न मम। द्विप्रकम्प्य कूर्चे निदधाति। स्रुवं परिमृज्य कूर्चे निमार्जनम्। स्रुक् मुख प्रणालिकाद्रव्यलिप्तामुन्मृज्य लिप्तहस्तं कूर्चे निमृज्यादित्यर्थः। पुनस्तथैव स्रुचं प्रमृज्य कूर्चदक्षिणभागे भूमौ उत्तानहस्तं निदधाति। अपां स्पर्शः। ततो गार्हपत्ये स्रुवद्वयं गृहीत्वा पात्रान्तरेण जुहोति। इदमग्नये ग्रहपतये रयिमते पुष्टिकपतये न मम। तन्त्रेणोत्तराहुतिः। इदं प्रजापतये न मम। एवं दक्षिणाग्नौ इदमग्नये नादायान्नपतये° तन्त्रेणोत्तराहुतिः°। इदं प्रजापतये°। स्रुक्स्थितं शेषं बहिनिष्कास्य अनामिकया प्राश्याचम्य पुनरनामिकया प्राश्याचम्य सुस्थितं शेषं पात्रान्तरे हस्ते वा कृत्वा प्राश्यपात्रं हस्तं सकृन्निर्लेढयाचम्याहवनीयस्य पश्चादुपविश्य सुचमभ्दिः सम्पूर्याहवनीयस्योत्तरत उत्सिञ्चति। द्वितीयां सम्पूर्योत्सिञ्चति। तृतीयां सम्पूर्य ईशान्यामुदीक्षति उच्चैः। चतुर्थीं सम्पूर्य कूर्चस्थाने त्रिः निसिञ्चति। प्राक्संस्थं स्रुक्स्रुवमाहवनीये प्रतप्य वेदीमध्ये निधाय। ततो गार्हपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयेषु क्रमेण समिधमादधाति। पुनः पर्युक्षणं पूर्ववत्। नाग्नेरुपस्थानं होममात्रोपदेशात्। ततः पत्नी यजमानवाचं विसृजति। आचम्याहवनीयं प्रदक्षिणं परीत्य गार्हपत्यदक्षिणाग्निः अन्तरेण यथाप्रविष्टं निष्क्रामतः। पूर्णाहुतेरन्ते एवं विधिस्तूष्णीम् अग्निहोत्रविधिः। इतिपूर्णाहुत्यन्तमाधानम्।

परिशिष्ट

कात्यायनश्रौतसूत्रे आधाननिरूपणम्

१. अमावास्यायामग्न्याधेयम् ॥
२. कृत्तिकारोहिणीमृगशिरःफल्गुनीषु ॥
३. हस्तो लाभकामस्य ॥
४. चित्रा च क्षत्रियस्य ॥
५. वसन्तो ब्राह्मणब्रह्मवर्चसकामयोः ॥
६. ग्रीष्मः क्षत्रियश्रीकामयोः ॥
७. वर्षाः प्रजापशुकामवैश्यरथकृताम् ॥
८. अग्न्यगारे कुर्वन्ति ॥
९. उदग्वंशं वाऽपरम् ॥
१०. दक्षिणपूर्वे द्वारे ॥
११. पौर्णमासवद्वपनम् ॥
१२. क्षौमे वस्तेऽहते पत्नी च ॥
१३. संस्थितेऽध्वर्यवे देये ॥
१४. गार्हपत्याऽगारे निर्मथ्याऽभ्यादधाति ॥
१५. वैश्यकुलाऽम्बरीषमहानसाद्वा ॥
१६. दिवाऽश्नाति रात्रौ वा ॥
१७. उपाऽस्तमयं देवाः पितरः पितरो देवा योऽहमस्मि स सन्यजे।
यस्याऽहमस्मि न तमन्तरयामि स्वम्म इष्टं स्वं श्रान्तं स्वं सुहुतमस्त्विति ॥
१८. पूर्वेण प्रविशति दक्षिणेन पत्नी ॥
१९. पश्चादग्नेरुपविशतो दक्षिणतः पत्नी ॥
२०. अश्वत्थशमीगर्भाऽरणी प्रयच्छति ॥
२१. अभावेऽगर्भस्य ॥
२२. वाचं यच्छाऽपूर्णाहतेरित्याहाऽस्तमिते निशायां पर्युदयं वा प्रधानकालत्वात् ॥

इति चतुर्थाध्याये आधाननिरूपिणी सप्तमी कण्डिका

१. गार्हपत्यागारेऽजं बध्नाति न वा विद्यमानं प्रातरग्नीधे दद्यादस्तमिते॥
२. रोहिते चर्मण्यानड्वहे चत्वारि हविष्पात्राणि मिमीते तं चातुष्प्राश्यं पचति॥

३. उद्वास्याऽसेचनं मध्ये कृत्वा सर्पिरासिच्याऽश्वत्थीस्तिस्रः समिधो घृताक्ता आदधाति समिधाऽग्निमिति प्रत्यृचम्॥

४. उप त्वेति जपति॥

५. द्वितीयां वाऽध्वर्युः॥

६. चत्वार ऋत्विजः प्राश्नन्ति ॥

७. राद्धस्ते ब्रह्मौदन इत्याह ॥

८. वरं ददाति ॥

९. संवत्सरं वा पुरस्तात्कुर्यात् ततः सर्वानादधीत ॥

१०. गार्हपत्येऽनुगते ग्रामाग्निमाहृत्य चातुष्प्राश्यं पक्त्वा विहरेत् ॥

११. रात्रिं जागरणधारणे ॥

१२. शकलैर्वा ॥

१३. व्युष्टायामुपशमय्य दक्षिणा वा संहरेदन्वाहार्यपचनश्चेत् ॥

१४. स्थानमुल्लिख्याऽभ्युक्ष्याऽन्वारब्धे हिरण्यं निधायोषाऽखूत्करान्निवपत्यन्तेषु शर्कराः ॥

१५. हिरण्यमुपर्येके ॥

१६. एवमितरयोः ॥

१७. पुरस्तादाहवनीयस्याऽष्टासु प्रक्रमेष्वेकादशसु द्वादशसु मत्या वा ॥

१८. इतरस्य वितृतीये दक्षिणतः ॥

१९. उत्सृप्तेऽग्निमन्थनमनुत्सृप्त एके ॥

२०. उदिते तूद्धरणम् ॥

२१. अपरेण गार्हपत्यायतनम् ॥

२२. अश्वमानयेति ब्रूयात् ॥

२३. स्थितेऽश्वे पुरस्तात् ॥

२४. जाते वरदानम् ॥

२५. मनसैके ॥

२६. तस्याऽभिश्वासः प्राणममृते दध इति ॥

२७. उच्छ्वासोऽमृतं प्राण आदध इति ॥

इति चतुर्थाध्याये आधाननिरूपिणी अष्टमी कण्डिका

१. दारुभिर्ज्वलन्तमादधाति भूर्भुव इति सम्भारेष्वमुष्य त्वा व्रतपते व्रतेनाऽदध इति यथर्षि॥

२. वरुणस्य त्वेति क्षत्रियस्येन्द्रस्य त्वेति राजन्यस्य ॥

३. मनोष्ट्वा ग्रामण्य इति वैश्यस्य ऋभूणां त्वेति रथकृतः ॥

४. रथन्तरं गायेति प्रेष्यति ॥
५. गानमध्वर्योः ॥
६. ब्रह्मा वा वेदयोगात् ॥
७. युक्तत्वाच्चाऽध्वर्योः ॥
८. इध्मेनोद्धरणमुपयम्य ॥
९. यथैनं धूम उपेयात् ॥
१०. वामदेव्यमिति प्रेष्यति ॥
११. अश्वः पुरस्तादयुवा तदभावेऽयुवाऽश्वाभावेऽनड्वान् ॥
१२. सम्भारानधिष्ठाप्य दक्षिणपूर्वपादेन प्राञ्चं नीत्वा आवर्त्य स्थापयति ॥
१३. बृहदिति प्रेष्यति ॥
१४. अग्निना पदं द्विरुपस्पृश्य तृतीयेनाऽदधाति द्वितीयेन प्रथमेन वा भूर्भुवः स्वरिति पूर्ववत् ॥
१५. पुरस्तात्परिक्रम्येध्मपूर्वार्द्धं गृहीत्वा द्यौरिव भूम्नेत्याह ॥
१६. आयं गौरिति चोपतिष्ठते सार्पराज्ञीभिः ॥
१७. दक्षिणाग्निमादधाति ॥
१८. सभ्यं च निर्मथ्य ॥
१९. गां दीव्यध्वमित्याह ॥
२०. धारणोपस्थानमतः ॥

इति चतुर्थाध्याये आधाननिरूपिणी नवमी कण्डिका

१. श्यैत-वारवन्तीय-यज्ञायज्ञियानीति च प्रेष्यति ॥
२. दक्षिणेनाऽग्नीन्परीत्योदगुत्सृजति ॥
३. ऋतुनक्षत्रसम्भारसामवपनचातुष्प्राश्यजागरणेध्मपूर्वार्द्धाऽन्वारम्भणसार्पराज्ञीर्न वा कुर्यात् ॥
४. अग्निहोत्रं च तूष्णीं श्रुतेः पूर्णाहुत्यन्ते ॥
५. निरुप्याऽज्यं गार्हपत्येऽधिश्रित्य स्रुक्स्रुवं च सम्मृज्योद्वास्योत्पूयाऽवेक्ष्य गृहीत्वाऽन्वारब्ध एवं सर्वत्र स्वाहेति ॥
६. वरं ददामीति वाग्विसर्जनम् ॥
७. द्वादशाहान्ते तनूहवींषि निर्वपति मासे द्वितीये तृतीये षण्मास्ये संवत्सरे सद्यो वा न वा ॥
८. अग्नये पवमानाय प्रथमा ॥
९. अग्नये पावकायाऽग्नये शुचये च द्वितीया ॥
१०. अदित्यै चरुस्तृतीया ॥

११.आग्नेय एव वा पुरस्तादादित्यस्य ॥

१२.षड् दक्षिणाः प्रतिविभज्य ददाति द्वादश चतुर्विंशतिं वा ॥

१३.भूयसीश्च यथाश्रद्धम् ॥

१४.धेनुरादित्यस्य ॥

१५.अनृताऽतिथ्यपनोदपूतिदार्वाधानबींसपक्वनाव्युदकानि वर्जयेत् ॥

१६.ब्रह्मचार्यग्निनित्यधारी क्षीरहोम्यग्निमुपशायी द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रमन्ततः ॥

इति चतुर्थाध्याये आधाननिरूपिणी दशमी कण्डिका

कात्यायनश्रौतसूत्रे पुनराधेयम्

१. पुनराधेयमाधानाऽप्रतिज्ञातस्य ॥

२. राज्ययशस्कामस्य वा ॥

३. त्रिरात्रावरमग्नीनुत्सृज्य ॥

४. सद्यो वा ॥

५. पुनर्वस्वोः ॥

६. वर्षासु मध्यन्दिने वा ॥

७. कुशैराधानम् ॥

८. व्रीह्यपूपमर्कपलाशयोः पक्वं गार्हपत्यस्थाने निदधात्येवमाहवनीयस्य यावं सद्यश्चेत् ॥

९. आग्नेयः पञ्चकपाल उपांशु प्रागुत्तमादनुयाजात् ॥

१०.तद्वर्जं वा ॥

११.अग्नीनिति वा प्रथमे प्रयाजेऽनुयाजे च ॥

१२.आज्यभागो द्वितीयोऽग्नये पवमानायेन्दुमते वा ॥

१३.हिरण्यं दक्षिणाऽनड्वान्वाऽग्न्याधेयिकीश्चेच्छ्रुतेः ॥

१४.अग्न्याधेयवदन्यत्सद्यः ॥

१५.अपराह्णे मैत्रावरुणी वशाऽनस्तमिते पुरोडाशेऽन्तं कृत्वा रात्रिशृतया प्रातश्चरन्ति तत आधानम्॥

इति चतुर्थाध्याये पुनराधेयनिरूपिणी एकादशी कण्डिका

कात्यायनश्रौतसूत्रे उपस्थाननिरूपणम्

१. सायमाहुत्यां हुतायां यजमानोऽग्नी उपतिष्ठते वात्सप्रेण ॥

२. न वा ॥

३. तिस्रस्तिस्रुपप्रयन्तोऽस्य प्रत्नां परि ते चित्रावसविति च॥

४. सन्त्वमित्युपविश्य ॥

५. गां गच्छत्यन्धस्थेति ॥

६. संहितेत्यालभते ॥

७. गार्हपत्यं गत्वोपतिष्ठत उप त्वेति ॥

८. गां गच्छतीड एहीति ॥

९. काम्या एतेत्यालभते ॥

१०. सोमानमित्यनुदकं व्रतोपायनवत् ॥

११. पौर्णमासवत्पुत्रनामग्रहणम् ॥

१२. भूर्भुवः स्वरिति वोभौ ॥

१३. प्रवत्स्यन्त्सर्वान्नर्येति प्रतिमन्त्रम् ॥

१४. गच्छति मत्या वाग्विसर्जनम् ॥

१५. प्रवसन्याजमानं कुर्याद्यथाकालमात्मसंस्काराद् धर्ममात्रत्वाच्छ्रुतेश्च ॥

१६. एत्य च मत्या वाग्यमनम् ॥

१७. समित्पाणिरनुपेत्य कच्चिदुपतिष्ठत आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्नीनागन्मेति प्रतिमन्त्रम् ॥

१८. समित्परिसमूहनानि चोपविश्य ॥

१९. तूष्णीं वोपस्थानं पूर्ववत् ॥

२०. एत्य च ॥

२१. गृहा मा बिभीतेति गृहानुपैति ॥

२२. क्षेमाय व इति प्रविशति ॥

२३. न हिंस्याद् गृह्यान्कामं श्वः ॥

इति चतुर्थाध्याये उपस्थाननिरूपिणी द्वादशी कण्डिका

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कात्यायनश्रौतसूत्रम् – सम्पा० – डॉ. जमुना पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
- आश्वलायनश्रौतसूत्रम्- आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः, पुणे
- बौधायनश्रौतसूत्रम्- Dr. W Caland, कलकत्ता
- आपस्तम्बश्रौतसूत्रम्- मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर
- द्राह्यायणश्रौतसूत्रम् – J. N. Reuter, लन्दन
- आधानपद्धतिः – श्री वामनशास्त्री, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पुणे
- कात्यायनयज्ञपद्धतिविमर्श – डॉ. मनोहरलाल द्विवेदी , राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली
- यज्ञतत्त्वप्रकाश- वेदविशारद अ. चिन्नस्वामी शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
- यज्ञसरस्वती – पं० मधुसूदन ओझा, जयपुर
- श्रौतयज्ञ परिचय – पं० वेणीराम शर्मा गौड़, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
- श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय – पं० युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत
- श्रौतयज्ञ मीमांसा- – पं० युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत
- श्रौतकोशः – वैदिक संशोधन मण्डल, पुणे
- यज्ञपात्रपरिचयः – प्रो० श्रीपाद सत्यनारायणमूर्ति, राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, तिरुपतिः

अन्तर्जालीय स्रोत

- https://vedicheritage.gov.in/rituals/
- https://www.slbsrsv.ac.in/faculties-and-departments/faculty-veda-vedanga/department-veda

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

द्वारा सञ्चालित एवं प्रस्तावित राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालय

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - ४५६००६ (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in